बीज और वृक्ष

[पतंगसिंह चरित्र]

मूल लेखक

श्रमणसूर्य आशुकवि प्रवर्तक

मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

रूपान्तरकार

श्री सुकन मुनि

प्रकाशक

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

पीपलिया बाजार, ब्यावर

पुस्तक

बीज और वृक्ष

मूल चरित लेखक :

मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

रूपान्तरकार :

श्री मुकुल मुनि

प्रकाशक

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

पीपलिया बाजार, ब्यावर [राज०]

अपनी बात

जैनसाहित्य के चार अनुयोगो मे धर्मकथानुयोग किंवा चरितानुयोग एक महत्त्वपूर्ण तथा सर्वजन-सुलभ सुवोध अनुयोग है । चरित्र या कथानक के माध्यम से किसी शाश्वत सत्य का उद्घाटन बहुत ही रोचक एवं जनभोग्य होता है। इसलिए जैन साहित्य का बहुत बड़ा भाग चरितानुयोग मे ग्रथित-गुम्फित है। प्राकृत-सस्कृत-अपभ्र श-गुजराती तथा राजस्थानी भाषा का भडार इस चरित्र साहित्य से समृद्ध है।

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरुदेव श्री मिश्रीमलजी महाराज की काव्य कला से आज कौन जैन अनभिज्ञ है ? वे जितने ओजस्वी तेजस्वी प्रवक्ता थे, उतने ही तेजस्वी तथा प्रवाहशील कवि थे, आशुकवि थे। उनकी ललितकाव्य-कला ने जहाँ पाडवयशोरसायन, जैन रामायण जैसे महाकाव्यो की सर्जना की है, वहाँ सैकडो ही लघुचरित्रो, हजारो श्लोक, दोहा, गीतिका आदि से राजस्थानी भाषा के काव्य-भडार को सुशोभित किया है। गुरुदेव श्री की कविता जितनी सहज और सुवोध है उतनी ही मार्मिक और शिक्षाप्रद भी है। आज भी वे सैकडो श्रावक-श्राविकाओ के कण्ठाग्र है, तथा अनेक श्रमण-श्रमणियाँ व्याख्यानो मे उनका सरस वाचन करके जन-जन को प्रतिबोध देते हैं।

बहुत समय से लोगो की, खासकर नई पीढी के युवक-युवतियो व विद्यार्थियो आदि की माग आती रही है कि गुरुदेव श्री के चरित्रकाव्य राजस्थानी भाषा की कविता मे

होने से हम पढ़कर उनका वांछित लाभ नहीं उठा [illegible]
एक तो काव्य वैसे ही दुर्बोध होता है, फिर राजस्थानी [illegible] डिंगल-पिंगल मिश्रित, अतः उनका हिन्दी रूपान्तर कि[illegible] जाय तो अधिक लोगों के लिए उपयोगी होगा।

जनता की इसी भावना का ध्यान रखकर गुरुदेव श्री [illegible] चरित्र काव्यों का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करने की यह योजना फलवती हो रही है।

'बीज और वृक्ष' नामक इस उपन्यास में गुरुदेव श्री [illegible] काव्यकृति '[illegible]' का हिन्दी रूपान्तर किया [illegible] है। बीज—मनुष्य का कर्म है, क्रिया है, और वृक्ष [illegible] फल, परिणाम है। जैसा कर्म होता है, वैसा ही [illegible] है, जैसा बीज बोता है वैसा ही वृक्ष [illegible] सिद्धान्त है। [illegible] ने पूर्व जीवन में जो [illegible] उनसे सुख-सौभाग्य प्राप्त किया और [illegible] अनेक विपत्ति [illegible] बीज और वृ[illegible] के इसी [illegible] वर्णन है। [illegible] पाठकों को [illegible] है।

1

सन्तान की आशा मे यौवन बीत गया; प्रौढायु मे रानी कचनसेना ने सूर्य का स्वप्न देखकर गर्भ धारण किया। राजा को अचानक प्रसन्न करने के लिए रानी गर्भ की वात छिपाना चाहती थी। पर छिपाये कैसे ? छिपाना नारी का भाव ही नही है, सो रानी राजा की ओर देखकर वार-वार स्करा देती थी। चकित-हर्षित राजा जितशत्रु ने रानी से छ ही लिया—

"प्रिये ! ऐसी क्या वात है, जो हमसे छिपाना चाहती ? तुम लाख छिपाओ, पर तुम्हारी मुस्कराहट वताये दे रही कि कुछ रहस्य की वात है।"

चन्दन की चौकी पर वैठी रानी लाज से कुछ और सकुड गई और वोली—

"क्यो वताऊ आपको ? होगी कोई वात। क्या सभी ाते पुरुषो को वताने की होती हैं ?"

राजा ने रानी का हाथ पकडा और वोला—

"मत वताओ ! पर मेरी ओर तो देखो ! मैं आँखो की नखावट पढ लूगा।"

राजा के यह कहने पर रानी ने अपना मुंह घुटनो के ीच छिपा लिया। राजा वोला—

"अच्छा तो हम जाते हैं। बात का पता तो [illegible] गया।"

राजा ने अन्धेरे में तीर छोड़ा था। सो तीर [illegible] पर ही लगा। मुस्कराते हुए रानी बोली—

"अच्छा तो मेरी [illegible] ने बता दिया होगा। [illegible] ही देखूंगी। मैंने उससे मना किया था।"

राजा जितशत्रु ठहाका मार कर हँसा और बोला—

"उस बेचारी दासी ने कुछ नहीं कहा मुझसे। [illegible] तुम खुद ही कह बैठी। बड़ी [illegible] हो तुम। तुम्हारी [illegible] दासी [illegible] में गई, [illegible] तुम्हीं अपने मुँह से बता दी।"

[illegible] कनकसेना बोली—

राजा बोला—

"प्रिये ! तुम नारी हो तो अनारी तो मैं भी नही। अनुमान भी तो एक ज्योतिष है। वैसे तुम्हारे सपने का हाल बताने लायक ज्योतिष भी मैं जानता हूँ। सूर्य स्वप्न देखकर तुम गर्भवती हुई हो। सो तुम तेजस्वी पुत्र की माता बनोगी।"

राजा के वक्ष पर सिर टिकाये रानी की आँखो मे हर्षाश्रु छलक आये और एक निश्वास छोड़ते हुए बोली—

"नाथ ! मैं तो अपने को बाँझ ही मान बैठी थी। युवराज के जन्म के बिना कचनपुर की प्रजा भी कितनी दु खी रहती है। आप ने भी कितने ही उपाय अनुष्ठान कर डाले। और जब दैव अनुकूल हुआ तो अपने आप ही कोई भाग्यशाली जीव मेरे गर्भ मे आ गया।"

राजा बोला—

"प्रिये ! मैं तो पहले ही कहता था कि जब होगा, तब अपने आप ही पुत्र होगा। तुम यत्न से शुभ सस्कार डालते हुए गर्भ का पालन करना। सोचता हूँ कि गर्भ का रहस्य तुम न बताती तो ही अच्छा था।"

राजा से अलग छिटककर बोली रानी—

"तो क्या आपको प्रसन्नता नही हुई ?"

"प्रसन्नता ?" राजा बोला—"अब समस्या यह है कि नौ महीने मैं कैसे काटूँगा। न बताती तो कट ही जाते।"

"काटने तो मुझे है। आप तो हर्षावेग मे काटेंगे और मुझे गर्भ भार उठाते हुए काटने है।"

"इसीलिए तो माँ धरती से भी बड़ी मानी गई है।"

इस प्रकार बहुत देर तक राजा रानी में बातें होती रहीं। फिर तो पूरे कन्चनपुर में यह संवाद प्रचारित हो गया कि महारानी कन्चनसेना माँ बनेगी और कन्चनपुर की प्रजा अपने भावी राजा को प्राप्त करेगी। यों तो राजा जितशत्रु भी स्वयं में एक सुशासक, न्यायप्रिय, धीर वीर और प्रजावत्सल सम्राट थे, पर अपने जैसा ही उत्तराधिकारी अपनी प्रजा को न दे पाने के कारण चिन्तित रहते थे। अब दैव ने उनकी चिन्ता दूर कर दी और इतना भी निश्चय हो गया कि उनका पुत्र तेजस्वी होगा, क्योंकि रानी ने शुभ स्वप्न देखकर गर्भ धारण किया था।

कन्चनपुर बड़ा रम्य और सुहाना नगर था। ज्यादातर भवन पक्के और भव्य थे। कच्चे तथा फूस के स्थान के बने हुए घर भी कुछ थे, जो नगर के बाहर थे। इनमें लकड़हारे, मजूर तथा निर्धन लोग रहते थे। धनिकों के साथ निर्धन भी तो होते ही हैं। वैसे सारे भव्य भवनों में रहने वाले बड़े-बड़े श्रेष्ठी, व्यापारी और कलाकार थे। नगर के बाजार लम्बे-चौड़े, हर वस्तु के अलग-अलग बाजार थे। राजपथ, जनपथ, वीथियाँ और चौक चौराहे तृण धूलि रहित और साफ-सुथरे थे। नगर के बीचों बीच निर्मल नीर से भरे सरोवर भी थे, जिनमें नील, अरुण, श्वेत और पीत—इन चार रंगों के कमल खिले रहते थे। सब मिलाकर कहें तो कन्चनपुर की वास्तुशोभा, प्रकृति, श्री और स्वच्छता अलकापुरी जैसी थी।

ऐसे ही रम्य नगर का राजा था जितशत्रु। जितशत्रु की रानी कन्चनसेना परम रूपवती तो थी ही, गुण और शील का भी निधान थी। राजा जितशत्रु का महामात्य गुणवर्धन विलक्षण राजनीतिज्ञ, चतुर और सब गुणो से भरपूर था। किसी भी राज्य मे यदि राजा धनुष होता है तो मन्त्री वाण। धनुष कितना ही अच्छा हो, यदि वाण सीधा और तीक्ष्ण नही होगा तो सब व्यर्थ है। इस दृष्टि से गुणवर्धन राज्य के दोष-अभाव दूर करने के लिए अमोघ वाण के समान था। जितशत्रु जैसे राजा और गुणवर्धन जैसे मन्त्री को पाकर कन्चनपुर की प्रजा चैन की वशी वजा रही थी। जैसे सरिता मे लहरें उठती है, वैसे ही वहाँ सुख-चैन की लहरें उठा करती थी।

दिन कटे, महीने वीते और नौ महीने भी पूरे हो गए। जैसे प्राची दिशा सूर्य को जन्म देती है, ऐसे ही रानी कन्चनसेना ने वालरवि-से कान्तिमान सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया। आज ही मालूम पडा कि कन्चनपुर मे कितना कन्चन है। राजा जितशत्रु ने सोना लुटाया, यह तो अनहोनी वात न थी, पर नगर के श्रेष्ठियो ने भी कन्चन वाँटा, मानो उन्ही के घर पुत्र हुआ हो। जन-जन का मन खुशी मे डूवा था। रानी की अन्तरग दासी चित्रा ने रानी से जडाऊ कडे पाये और राजा ने उसे हीरक हार दिया। सब दास-दासियो ने इतना पाया कि वे दास-दासी तो रहे, पर दरिद्र नही रहे। नगर भर मे हर्षोत्सव होता रहा और इसी हर्ष मे वारह दिन भी वीत गए।

वारहवें दिन नामकरण संस्कार हुआ। पंडितों ने राज-पुत्र का जन्म लग्न देख-विचार कर नाम रखा 'पतंगसिंह।'

"यह क्या नाम हुआ?" राजा के यह पूछने पर राज-पंडित ने कहा—

"पृथ्वीनाथ! बालक का जन्म कन्या राशि में हुआ है। इसलिए वर्ण से तो नाम रखा जाना ही था। इसके अति-रिक्त इस नाम की एक दूसरी सार्थकता यह भी है कि पतंग का शब्दार्थ सूर्य है। हमारा भावी राजा सूर्य के समान तेजस्वी होगा। महारानी ने भी सूर्य का स्वप्न देख कर गर्भ धारण किया था। अतः राजपुत्र नामी का नाम पतंगसिंह सर्वथा सार्थक और उचित ही है।"

राजपंडित की यह टिप्पणी राजा को बहुत अच्छी लगी और प्रसन्नमन राजा ने एक थाल भरकर सुवर्ण पंडित को दिया। संयोग ऐसा बना कि तभी द्वारपाल ने राजा जित-को सूचना दी कि महाराज! काशी से आये एक पंडित आप दर्शन करना चाहते हैं। यह सुन राजा ने मन्त्री सुमतिसेन की ओर देखा और बोला—

"महामन्त्री! काशी तो विद्या का केन्द्र है। काशी से आये पंडित शायद राजपुत्र के जन्मपत्री को देखकर शुभ फल प्रताप बतावें? जब वे आ ही गए हैं तो उन्हें भी पुरस्कार दे सम्मानित किया जाए?"

मन्त्री बोला—

"राजन्! वैसे तो कोई बात नहीं। पर दो पंडितों

टकराव अच्छा नही होता । हमारे राजपडित भी तो कम नही हैं । आपको याद होगा कि एक बार इन्होने कहा था कि कभी न कभी महारानी की गोद अवश्य भरेगी । सो इनकी भविष्य-वाणी सही ही निकली ।"

राजा बोला—

"इसमे टकराव की क्या बात है ? दो सयाने एक मत वाली कहावत चरितार्थ हो जायगी । जो बात हमारे राजपडित ने बताई है, वही काशी के पडित ही बतायेंगे, पर पुष्टि तो हो ही जायगी ।"

"तो फिर ठीक ही है ।"

मन्त्री ने अपनी राय दे दी और राजा ने द्वारपाल को आदेश दिया कि काशी से आये पडित को सम्मान-सहित ले आओ । काशी निवासी ज्योतिर्विद् पडित विष्णुदत्त सभा मे आ गए । राजा ने पडित के हाथ से जन्मपत्र लिया और काशी के पडित की ओर बढाते हुए कहा—

"हमारे राजपुत्र की जन्मपत्रिका देखकर कुछ प्रकाश डालिए ।"

पण्डित विष्णुदत्त ने रेशम पर लिखे जन्म-पत्र के दोनो सिरो के गोल-डडो को लम्बा किया और एक-एक पक्ति पढने के बाद कहा—

"राजन् ! आपका प्रताप बढे । जिस जन्म-नक्षत्र मे कुमार का जन्म हुआ है उसके अनुसार इस पत्रिका मे जो फलादेश निकाला गया है, वह सब सही है । जो लिखा गया

है, सो तो ठीक ही है, पर कुछ अनलिखा भी रह गया है।

जन्मपत्र के एक विशेष स्थान पर पुनः दृष्टि गड़ाते हु
पंडित विष्णुदत्त ने पुन. कहा—

"पृथ्वीनाथ ! राजपुत्र यशस्वी, तेजस्वी तो होगा ही
उत्तराधिकार में प्राप्त आपके राज्य के अतिरिक्त अपने भा
से चार राज्यों का अधिपति भी बनेगा। आयु भी इत
दीर्घ तो है, किन्तु ।"

रुक गए पंडितजी। राजा ने टोका—

"रुक क्यों गए ! किन्तु क्या ? जो भी हो निश्शंक क
डालो।"

पंडित ने कहा—

"राजन् ! किन्तु यह कि यदि कुमार का विवाह ज
से छह महीने का होने तक नहीं किया गया तो इसके दीर्घा
होने में पूरा सन्देह है।"

मन्त्री गुणवर्धन ने कुछ रूखे स्वर में पूछा—

"आपके इस कथन का प्रमाण क्या है ?"

पंडित बोला—

"प्रमाण ? प्रमाण तो सीधा-सा है और वह है मे
कथन की परीक्षा।"

"अर्थात् ?" राजा ने पूछा—

"अर्थात् यह कि" पंडित ने कहा—"आप छह मही
का विवाह न करें। फिर तो मेरे कथन के सत्यासत्य क
प्रमाण मिल ही जायगा। लेकिन यह परीक्षण आपके लि

नही है, क्योकि फिर कुमार को छह महीने से कम उम्र का नही बनाया जा सकेगा। वैसे आपके हित मे यही है कि मेरे कथन का विश्वास करें और छह महीने के भीतर ही इसका विवाह कर दें। मेरा नाम-पता अकित कर लीजिए। विष्णुदत्त मेरी सज्ञा है और काशी की उत्तर विप्र वीथी मे मेरा निवास है। अगर मेरा कथन मिथ्या निकले तो मैं अपना सिर कटा दूंगा।"

पडित के इस दावे से राजा जितशत्रु बहुत प्रभावित हुआ और मन्त्री से बोला—

"मन्त्री जी! जब राजकुमार के जन्मपत्र की अन्य सब बाते इन पडित जी ने भी वही बताई हैं जो हमारे राज पडित ने बताई है तो इनका अतिरिक्त कथन भी विश्वसनीय है। अत इन्हे सम्मानित करो।"

मन्त्री ने प्रतिहार को आदेश दिया। प्रतिहार सुवर्ण से भरे दो थाल लाया। राजा ने दोनो थालो को स्पर्श किया और प्रतिहार ने दोनो थालो का सुवर्ण काशी से आये पंडित को भेट किया।

काशी के पडित एक सप्ताह कचनपुर मे रहे और फिर चले गए। इसी तरह एक महीना और बीत गया। राजकुमार पतंगसिह एक महीना बारह दिन का हो गया। राजा को चिन्ता हुई कि लगभग डेढ महीना तो बीत ही गया। छह महीने होते ही कितने है? फिर तो हाथ कट जायेंगे। कही-न-कही कुमार का विवाह कर ही देना चाहिए। यह

सोच राजा ने मन्त्री को अपने एकान्त कक्ष मे बुलाया औ बात शुरू की—

"मन्त्रिवर ! कही ढूंढ-खोज करो। मुझे पंडित विष्णुदत्त की बात पर विश्वास है। छह महीने से पहले ही कुमार क विवाह हो जाना चाहिए।"

माथे पर बल डालते हुए मन्त्री बोला—

"बात पर विश्वास हो या न हो, पर मन का सन्देह मिटा लेना चाहिए, इससे तो मै भी सहमत हूँ। लेकिन यह अनहोना काम होगा कैसे ? आपने किसी कहानी मे भी सुन है कि छह महीने के बालक का विवाह हुआ हो ?"

झुंझलाकर राजा बोला—

"मन्त्री ! तुम छह महीने की उम्र मे विवाह की बात करते हो ? अरे भई, विवाह तो गर्भ मे भी हो जाते हैं। ऐसे अनेको उदाहरण है, जब दो मित्र वचन देते हैं कि यदि मेरे लड़का और तुम्हारे लड़की या तुम्हारे लड़का और मेरे लड़की हुई तो हम परस्पर अपनी सन्तानो का विवाह करके स्थायी सम्बन्ध जोड़ेंगे।

मन्त्री बोला—

"ऐसा होता है। मैं भी मानता हूँ। पर कभी-कभी भाग्य ऐसा मखौल भी करता है कि दोनो मित्रो की गर्भवती पत्नियाँ एक-सी सन्तानो को जन्म देती है। या तो दोनों के लड़के ही होते हैं या फिर लड़कियां ही, तब चाहकर भी कुछ नही हो पाता।"

राजा ने मन्त्री का हाथ पकडा और बोला—

"मन्त्री ! तो फिर इसी बात पर डटे रहो। भाग्य की महिमा मान गए अब ? भाग्य ही तो है जो पतंग का विवाह छह महीने की उम्र मे होने की बात आई। जब पतग का भाग्य है तो कोई-न-कोई सद्यजात कन्या अपनी माँ की गोद मे पतग की पत्नी बनने की प्रतीक्षा कर रही होगी। ढूढ-खोज का निमित्त तो हमे बनना ही है।"

"ठीक है,तो फिर हम दोनो ही चले।" मन्त्री बोला—"राजा, राजा से ही प्रभावित होता है।"

निश्चय पक्का हो गया। राजा जितशत्रु और मन्त्री गुणवर्धन—दोनो ने ही चतुरगिणी सेना सहित साथ-साथ प्रस्थान किया। सबसे पहले जनकपुर पहुँचे। जनकपुर कचन-पुर से सौ डेढ सौ कोस दूर था और जितशत्रु के राज्य का निकट-तम पडोसी राजनगर था। यहाँ का राजा था जनकसेन और रानी पुष्पवती। जब राजा जनकसेन ने सुना कि हमारे नगर मे कचनपुर के राजा अपने अमात्य सहित पधारे है तो उसने उद्यान मे आकर अतिथि राजा की अगवानी की और सादर नगर प्रवेश कराया। पहला दिन यो ही औपचारिकता मे बीता। दूसरे दिन राजा जनकसेन अपने दो अमात्यो के साथ अतिथि राजा जितशत्रु और उनके अमात्य गुणवर्धन के साथ बैठे। बातो ही बातो मे राजा जनकसेन ने कंचनपुर के राजा जितशत्रु से पूछा—

"राजन् ! आपके प्रताप और शौर्य की बाते तो हम सुनते

रहते थे। आपने मेरे यहाँ पधार कर मुझे बड़भागी बनाया है, इसे मैं कभी न भूलूंगा।"

जनकसेन की विनयवाणी सुनकर राजा जितशत्रु मुस्कराये और अपने मन्त्री की ओर देखकर कुछ कहना ही चाहते थे कि उनके मन्त्री गुणवर्धन ने किसी को सम्बोधन किये बिना कहा—

"अब तो हम यही चाहते है कि आप दोनो राजाओं और दोनों देशो का मैत्री सम्बन्ध स्थायी बन जाय।"

"सो तो होगा ही और होना भी चाहिए।" जनकपुर के राजा जनकसेन ने कहा—"हम भी यही चाहते है कि यह आना-जाना बना रहे।"

राजा जितशत्रु बोले—

"राजन्! हम तो निकले ही इस उद्देश्य मे है कि किसी राजा से हमारे अटूट और स्थायी सम्बन्ध बनें। इसी उद्देश्य से हमें आगे के देशो मे भी जाना है, और यदि ।"

कहते-कहते अटक गए राजा जितशत्रु। उत्सुक होकर राजा जनकसेन ने पूछा—

"और यदि क्या?"

"और यदि यह कि ···।" जितशत्रु बोले—"आपसे ही यहाँ हमारा उद्देश्य पूरा हो जाय तो हमे आगे क्यों जाना पड़े?"

"ऐसी क्या बात है?" राजा जनकसेन ने कहा—"मैं तो बहुत छोटा राजा हूँ। जिस योग्य हूँ, सदा तैयार हूँ

लेकिन अपनी बात कुछ स्पष्ट करके कहें तो कृपा होगी।"

कंचनपुर नरेश बोले—

"स्पष्ट ही कहूँगा। बात यह है कि यदि आपके कोई कन्या हो तो हम दोनो सम्बन्धी बन सकते है। मेरी इस यात्रा का यही उद्देश्य है। कंचनपुर के सबसे निकट आपका जनकपुर ही था, सो आ गया।"

जनकसेन बोले—

"राजन् ! कन्या है भी और नही भी। कितना अच्छा होता कि ऐसा सम्भव होता।"

राजा जनकसेन ने यह बात कुछ ऐसा मुंह बनाकर कही मानो वे चाहकर भी विवश हो। उनकी इस दुहरी बात से राजा जितशत्रु और मन्त्री गुणवर्धन दोनों ही चकित हुए। राजा जितशत्रु ने पूछा—

"राजन् ! यह आपने क्या बात कही कि कन्या है भी और नही भी है ?"

जनकसेन बोले—

"ठीक ही कहा है राजन् ! कन्या 'है', इसलिए 'है'। पर अभी तो धायो के हाथो मे है। मुश्किल से महीने भर की होगी।"

हर्ष से उछल पडे राजा जितशत्रु। जनकसेन के हाथ पर हाथ मारते हुए बोले—

"तो फिर मिलाओ हाथ। हम दोनो समधी हुए। बुलाओ पडित को अरे देखते क्या हो ? ठीक ही कह रहा

हूँ मैं।"

"आप.... ।" अटकते-अटकते जनकसेन बोले—"ए
महीने की कन्या का विवाह ?"

"क्यो क्या परेशानी है" जितशत्रु बोले—"मेरा रा
कुमार भी तो डेढ-दो महीने का ही है। आपका जामाता डे
दो महीने का और मेरी पुत्रवधू महीने भर की।"

हो-हो करके हँसने लगे जितशत्रु और फिर हँसी रो
कर बोले—

"राजन्! ब्याह तो गर्भस्थ शिशुओ के भी होते है
फिर ये दोनो तो धायो के हाथो मे पल रहे है।"

"अब मुझे क्या परेशानी है ? ब्याह तो होगा ही, प
मैं महारानी जी से भी परामर्श कर लूं।"

"अवश्य कर लीजिए। बेटी तो आप दोनो की ही है
पर बेटी का नाम क्या है ?"

"कमलावती।"

"बहुत सुन्दर।" जितशत्रु बोले—"मेरे पुत्र का ना
है पतगसिह। पतंग सूर्य को कहते है और कमल सूर्य के दर्श
करके खिलता है। विधाता भी कैसे सयोग बनाता है।"

इसके बाद यह अनौपचारिक गोष्ठी भी समाप्त ह
गई। राजा जितशत्रु मन्त्री गुणवर्धन सहित अतिथि भवन
गये और इधर जब राजा जनकसेन ने महारानी पुष्पवती
पूछा तो वे क्यो इन्कार करती ? भाग्य वैसी ही गति कर
है, जैसी होनहार होती है। महारानी पुष्पवती ने अपनी मह

सम्मति देते हुए कहा कि एक तो पड़ोसी राजा, दूसरे हमारे राज्य से वडे राज्य के अधिपति भी और तीसरे घर आया संयोग। यह विवाह तो सब विधि अच्छा रहेगा। अब निश्चिन्त होकर कमला को पढाना। उसके विवाह की चिन्ता कही नही रहेगी। ससुराल वाले जब चाहेगे अपनी गृहलक्ष्मी को ले जायेंगे। न स्वयवर का झझट रहा और न देश-देश के राजाओ के चित्र मँगाने की परेशानी रही।"

इतने पर भी जनकसेन ने फिर कुरेदा—

"तो हाँ ही कर दूं ? खूब सोच लो। विवाह के काम वडे सोच-समझ कर होते है।"

"इसमे सोचना क्या है ?" महारानी पुष्पवती बोली—

"आपका जामाता कोई राजपुत्र ही तो बनेगा। मेरी मानो, चटपट कर डालो।"

बस फिर तो चटपट ही हुई। जनकपुर के पडित आये। पतगसिह और कमलावती की जन्मकुण्डली ऐसी मिली कि पडितो ने एक स्वर से कहा—

"यह विवाह तो होना ही था। दोनो एक दूसरे के लिए ही जन्मे है।"

सब कुछ पक्का करके राजा जितशत्रु कचनपुर लौट गये और जब बरात लेकर पुन जनकपुर आये, तब पतंगसिह की अवस्था चार माह की थी, लगभग इससे कुछ कम राजकुमारी कमलावती थी। जनकपुरवासी वर-वधू को देखकर हँसते-मुस्कराते और तरह-तरह की बाते करते थे। कोई कहता—

"व्याह क्या है, बड़े लोगो के चोचले है।" ए
बोला—

"बड़े लोग और इस पर भी राजा, जो न करें
थोड़ा है। कुछ कुँआ-वगीची का व्याह करते है और तुलसी
शालग्राम का तो बहुत करते है।"

"यह सब तो करते होंगे।" एक अन्य ने कहा—"प
गुड्डे-गुड़िया का व्याह तो लोग सचमुच के वर-कन्या का-
करते है। करोड़ों फूंक डालते है।"

पहले ने कहा—

"तो आज भी तो गुड्डा-गुडिया का व्याह हो र
है। देखो, वर गुड्डा है या नही ? उसे एक धाय गुड्डे
तरह गोद मे लिए बैठी है।"

ये बातें पुरुषो की थी। मण्डप के निकट ही जो नारि
बैठी थी, वे भी इस नये ढग के व्याह को देखकर मुग्ध
रही थी। एक वृद्धा सबसे कह रही थी—

"देखो, छोटे-छोटे गुड्डा-गुडियो-से ये वर-वधू कित
अच्छे लगते है।"

"हाँ अच्छे तो लगते ही है।" एक युवती ने मुस्करा
कुछ विनोदी व्यंग मे कहा—"अभी-अभी दोनो एक साथ रो
तो दोनो की धायें दूध पिलाकर चुप करने लगी। तब कै
विचित्र लगा।"

"कुछ भी लगा।" एक और युवती बोली—"पर
जोड़ी जमती है। देखना बड़े होकर दोनो काम-रति को जीतें

ग्रौर ग्रभी क्या कम है। लाल प्रावार मे दुलहिन लिपटी है ग्रौर नीले मे है वर।"

ऐसी वाते वहुत हुई। मुख्य वात यह हुई की राज कुंवर पतगसिह ग्रौर कुंवरि कमलावती की भांवरें पड गईं। दोनो पति-पत्नी वन गए। ग्रपवाद नियम के ग्रनुसार वहू की विदा वर के साथ नही हुई। विदा होते समय राजा जितशत्रु ने राजा जनकसेन से कहा—

"राजन्! वडी होने पर जव मैं ग्रपनी पुत्रवधू कमलावती की विदा कराने ग्राऊँगा, तव भी ग्रव की तरह वरात लेकर ग्राऊँगा। तभी तो वर वधू एक दूसरे को जानेंगे समझेंगे ग्रौर एक वात यह भी है कि दहेज का कुछ भी सामान मैं ग्रपने साथ नही ले जाऊँगा।"

"पर, यह क्यो?" राजा जनकसेन ने ग्राश्चर्य के साथ पूछा—दहेज के विना विवाह की विदा कैसी? वेटी विदा नही हो रही, इसकी तो विवशता है, परिस्थिति ही ऐसी है, पर दहेज तो जायगा ही।"

जितशत्रु हँसकर वोले—

"राजन्! दहेज की शोभा भी वधू के साथ है। जव मेरी वहू ही नही जा रही तो उसके विना दहेज क्या ग्रच्छा लगेगा? कमलावती यहां जनकपुर मे वडी होगी ग्रौर पतंग सिह कचनपुर मे। सोलह सत्तरह वर्ष वाद फिर सभी काम इसी ढग से होगे, जैसे कि विवाहो मे होते है।"

"जैसी ग्रापकी इच्छा।" कहकर राजा जनकसेन मौन

हो गया। बरात विदा हुई। जितशत्रु कंचनपुर पहुँच ग
महारानी कचनसेना ने अपने पुत्र के माथे का टीका पुलक भ
से निहारा और पुत्रवधू के बड़े होने पर मिलने की कल्प
मे डूब गईं। फिर तो समय बीतने लगा। कुमार पतगि
पाँच धायो के हाथो मे यहाँ कन्चनपुर मे बढ रहा था और र
पुत्री कमलावती जनकपुर मे। इस रग-विरगे संसार मे स
तरह के संयोग होते है। वहुत-सी नयी और विचित्र ब
होती है। चार महीने के दुधमुंहे पतगसिह का विवाह
ससार की अनेको विचित्र बातो मे से एक थी। यह सब
दैव की लीला ही थी। वरना तो क्या काशी के पडित वि
दत्त को उसी दिन आना था, जिस दिन पतगसिह के ज
पत्र पर विचार हो रहा था और उसके नाम के विषय
टिप्पणी हो रही थी। इतना ही क्यो, इसके वाद की स
घटनाएँ एक के वाद एक स्वचालित ढग से घटी। सबसे ब
विचित्र बात तो यह हुई कि पतगसिह को समान शिशुवय
कन्या भी सहज मे ही मिल गई। राजा जनकसेन भी विव
करने को तैयार हो गए और फिर मूल बात यह कि अनहो
उम्र मे पतगसिह का विवाह भी हो गया। दैव की माया ब
विचित्र है।

समय बीता तो पतगसिह छह महीने का हो गय
विवाह के बाद के दो महीने यो ही बीत गए। फिर तो
भी बीते और पतगसिह पाँच वर्ष का हो गया। अब प
खूब बातें करता था। झलकते-चमकते कुण्डल और रत्नजा

गोल टोपी-सी पहनकर वह जव राजा जितशत्रु की गोद मे वैठता तो राज सभा की शोभा कुछ और ही होती। उसके माथे पर काला डिठौना लगा रहता था, क्योकि वह सुन्दर भी तो वहुत था। उसे ही देखकर महारानी कन्चनसेना मन ही मन कहती थी कि अव तो मेरी पुत्रवधू भी पाँच वर्ष की हो गई होगी। एक दिन वह भी होगा, जव रुन-झुन, रुन-झुन करती हुई मेरी वहू अन्त पुर मे घूमेगी।

विधाता जाने क्या सोचता है, इसे कोई नही जानता। महारानी कन्चनसेना के भाग्य मे विधाता ने पुत्र को जन्म देकर पुत्रवती वनना ही लिखा था, पुत्रवधू देखना और पुत्र को युवराज वनते देखना नही लिखा था, सो वे तभी चल वसी, जव पतगसिह पाँच ही वर्ष का था। महाराज जितशत्रु पतंग को अङ्क मे भर कर रोये। वे ही क्या रोये, पूरा कन्चनपुर रोया था। पर रोने से क्या होता है? जानेवाला तो चला ही गया। पांच-पांच धाय माताओ और अनगिनत दासियो के होते हुए भी पतगसिह मातृहीन हो गया और राजा जितशत्रु एकाकी हो गए। यो राजा अनेक रानी करता है, पर सुखद साहचर्य देने वाली पत्नी एक ही होती है। वहुत दु खी थे राजा जितशत्रु। फिर भी घाव सभी भरते है। अन्तर समय का होता है। समय वडे-वडे घावो को भरता है। समय वीतता जाता था और राजा प्रजा सव सामान्य होते जाते थे। मरे के साथ कौन मरता है? कितना ही महत्वपूर्ण व्यक्ति मर जाय, ससार की गति मे कुछ भी अन्तर नही आता। □

2

रानी कंचनसेना को दिवंगत हुए दो वर्ष हो गए और पतगसिंह सात साल का हो गया। इन दो वर्षो मे राजा जितशत्रु सामान्य हो गए। पूरे मन से राज-काज देखने लगे, पर मन्त्रियों के लाख कहने-समझाने पर भी वे दूसरा विवाह करने को तैयार नही हुए। फिर भी महामन्त्री गुणवर्धन ने अपना प्रयास नही छोड़ा। मन्त्री के साथ कचनपुर की समस्त प्रजा भी चाहती थी कि हमारे राजा के एक रानी भी हो। जैसे प्रजा के बिना राजा का अस्तित्व नही, वैसे ही चन्द्रिका बिना चन्द्र और रानी बिना राजा भी फीका-फीका लगता है। रानी तो राजा की सुवास है। सुवासरहित पुष्प किस काम का ? ये सब बातें काव्यात्मक और भावुकता मात्र थी, पर राजा के दूसरे विवाह कराने का एक व्यावहारिक कारण यह था कि वे अब चिडचिडे हो गए थे। छोटे-छोटे अपराधो पर कठोर दण्ड का आदेश दे डालते थे। इसलिए मंत्री गुणवर्धन चाहता था कि महाराज जितशत्रु का दूसरा विवाह अवश्य हो। मन्त्री सोचता था कि यदि रनिवास मे रानी आ जायेगी तो महाराज के जीवन में सरसता भी आयेगी। वे अधिक सहृदय हो जायेंगे। और फिर राज-काज और भी अच्छा चलेगा।

जब राजा ने दो टूक इन्कार कर ही दिया तो मन्त्री ने

युक्ति लडाई। उसने भोजनशाला की दासियों को पटाया कि तुम सब राजा के भोजन मे अधिक नमक मिला दिया करो। राजा के द्वारा जो दण्ड मिलेगा, उससे मैं तुम्हे मुक्त करा दूंगा। यह अपराध भी तुम्हे राजा के हित मे ही करना है। दासियाँ मत्री की बात कैसे टालती? राजा जब भोजन करने बैठा तो थू-थू करके उठा। सेवको ने तुरन्त भोजन बदल दिया। राजा ने सभी दास-दासियो को खूब फटकारा। दो दिन बाद फिर वही घटना घटी। इस बार राजा आपे से बाहर हो गया। दास-दासियो पर बरस पडा—

"तुम सब अन्धे हो? एक को भी नही छोडूंगा। अब जीवनभर बन्दीगृह मे सडोगे।"

अवसर देख मत्री आ गया और राजा से बोला—

"स्वामी! इन्हे बन्दीगृह मे डालने पर भी आपके भोजन मे वह सरसता नही आयेगी, जो आनी चाहिए। कितना ही अच्छा भोजन बने, पर जब तक पत्नी पति को परोस कर नही खिलाती, तब तक भोजन-भोजन नही। मेरी मानें, आप विवाह कर ले। राजा भी तो आखिर पति है। भोजन परोसते समय और हजार दासियाँ होते हुए भी पत्नी द्वारा विजन हिलाते समय चूडियो की खनक का स्वाद ही कुछ और होता है।"

राजा की आँखो मे आँखे डालते हुए मत्री ने पुन. कहा—

"स्वामी! ये दासियाँ भी आने वाली महारानी की देख-रेख मे ही ठीक होगी।"

राजा ने मन्त्री की बात ध्यान से सुनी। विचार भी किया और बोला—

"मंत्रिवर ! मै भी पुरुष हूँ। आपसे प्रौढ हूँ तो क्या हुआ, पत्नी के सुखद साहचर्य की आवश्यकता तो वृद्धो को भी होती है। मुझे भी है। मेरे राज्य मे सुन्दरियो की कमी नही है। पर वे सब मेरी माता, बहने और बेटियाँ हैं साहचर्य सुख स्वदारा से मिलता है। इस दृष्टि से मुझे विवाह कर ही लेना चाहिए। लेकिन अब दूसरा पहलू देखो, जिसे देखकर ही मैंने विवाह न करने का निश्चय कियाहै। यदि तुम भी उस पहलू को देख लोगे तो फिर नयी-नयी युक्तियो से मुझे विवाह के लिए बाध्य नही करोगे।"

मन्त्री ने राजा की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। मानो पूछ रहा हो कि विवाह न करने का ऐसा कौन-सा कारण है जो दूर नही किया जा सकता। राजा ने मन्त्री का भाव समझा और विस्तार से बताने लगा—

"मन्त्री ! अब मै पतगसिंह का पिता ही नही, माता भी हूँ। उसके जीवन मे मृत्युसम दुखदायी कोई बडा सकट आयेगा। काशी के पंडित ने दावे के साथ कहा था। बोलो याद है न ?"

मन्त्री बोला—

"याद है स्वामी। साथ ही यह भी याद है कि पडित ने यह भी कहा था कि यदि कुमार का विवाह छह महीने की उम्र से पहले ही हो जाय तो संकट टल जायगा।"

"सकट टल जायगा। यह मैं भी मानता हूँ। क्योंकि कुमार का विवाह जनकसेन राजा की दुहिता कमलावती के साथ हो ही चुका है।" राजा ने कहा—"लेकिन सकट तो आयेगा ही। खैर सकट की बातें छोडो। मूल बात पर आओ।"

"मत्रि! विमाता माता नही हो सकती। यदि मैं दूसरा विवाह कर भी लूँगा तो मेरे लाडले पतग का जीवन संकट में पड जायगा। यह तो सयोग की बात है कि विमाता भी माता की तरह वात्सल्यमयी निकल आये। ज्यादातर विमाताएँ तो सौतेले पुत्र को फूटी आँख भी नही देख सकती। अब तुम्ही बताओ, अपने सुख के लिए मैं राजपुत्र के जीवन को दुखमय बनाऊँ?"

मत्री ने गम्भीरता से कहा—

"राजन्! आपके कथन का एक-एक अक्षर सत्य है। फिर भी आपके विवाह कर लेने पर और यह निश्चय हो जाने पर भी कि आने वाली महारानी जगत्प्रसिद्ध विमाताओ की तरह क्रूर होगी—कुमार पतगसिह का जीवन सकट मे नही पड सकता।"

"राजन्! एक वर्ष वाद कुमार आठ वर्ष के हो जायेंगे। यह समय उनके विद्यारभ का समय है। वे आचार्य के पास रहकर अध्ययन करेंगे। मैं उनके लिए ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि राजभवन मे उनका कोई सम्बन्ध ही न रहे। आने वाली महारानी को इतना भी पता नहीं चलेगा कि उनकी

मौत का कोई पुत्र भी है। फिर उनके जीवन मे विमात द्वारा क्या सकट आयेगा ?"

राजा के मन मे मंत्री की बात बैठ गई। बहुत देर तक उसने ऊँच-नीच सोचा। वैसे भी राजा का पुरुष मन दूसरा विवाह करना चाहता था। पतंगसिंह के उत्तरदायित्व की आड़ तो सचमुच बालू की भीत ही थी, जो एक धक्के का इन्तजार कर रही थी। मंत्री के सुझाव का धक्का लगा तो राजा के असली विचार उभर आये और उसने मत्री से कहा—

"मन्त्रिवर ! तो फिर पहले कुमार पतगसिंह की व्यवस्था करो और फिर अपनी पसन्द की महारानी भी देख आओ।"

उछल पडा मत्री और बोला—

"देखना क्या है ? सैकडो राजा मेरे पीछे पडे है। आप कहे तो सौ ले आऊँ ? अपने उपयुक्त आप ही छाँट ले। मैं चित्र मँगवा लूंगा।"

बस फिर तो यह संवाद समस्त कचनपुर मे फैल गया कि महाराज जितशत्रु दूसरा विवाह करने के लिए तैयार हो गए है। इस सवाद से क्या सभासद और क्या प्रजा—सभी सुखी व प्रसन्न हुए।

× × ×

कचनपुर से बाहर एक गाँव के निकट मत्री गुणवर्धन ने एक मनोहर उद्यान चुना। यहाँ सरिता का किनारा था और वन-की-सी शान्ति विराजती थी। यहाँ तीन खण्ड का एक भवन बनवाया मंत्री गुणवर्धन ने। यह भवन ही पतंग

सिंह के अध्ययन की विशेष व्यवस्थित पाठशाला थी। मंत्री ने पर्याप्त दास-दासियाँ, भोजनादि की सब व्यवस्था कुमार पतंगसिंह और उसके गुरु आचार्य के लिए कर दी और सकल कला-निधान आचार्य से कहा—

"पूज्य! यहाँ एकान्त मे कुमार को बहत्तर कलाओं का ज्ञान दें। आपकी पंडितानी के लिए पर्याप्त धन राजकोष से पहुँच जाया करेगा। केवल पढने-पढाने की ही नही, कुमार की अन्य सब जिम्मेदारियाँ भी आपकी ही है। अब कुमार कला-निष्णात होकर ही यहाँ से निकलेगा। इतना और कि मेरी आज्ञा के बिना कोई भी कुमार से मिलने नही आयेगा और आप भी इसे कही नही जाने देंगे।"

आचार्य ने मंत्री की बातो को ध्यान से सुना और उन्हे पूरा आश्वासन दिया। इधर राजा जितशत्रु के दूसरे विवाह की तैयारियाँ होने लगी। अनंगपुर की राजकुमारी अनंगमाला के साथ उनका विवाह पक्का हुआ था। अवसर देख मंत्री ने विवाहपूर्व ही राजा से कहा—

"राजन्! मैंने इस बात का कड़ा प्रबन्ध कर दिया है कि आने वाली महारानी कुमार पतंगसिंह के विषय मे कुछ भी न सुन पाये। भवन, अन्तःपुर आदि की सब दासियो को भी मैंने समझा दिया है कि वे नई रानी से कभी यह न कहे कि महाराज के कोई पुत्र है और वे पढ रहे है आदि आदि। और महाराज आप भी कभी महारानी से न कहे।"

राजा हँसे और मंत्री से बोले—

"मैं कहूँगा ? मै भला क्यो कहने लगा ? मंत्रिवर ! तुमने वह सब व्यवस्था कर ही दी जिसके डर से मैं विवाह नही कर रहा था । अब दोनो ही काम होगे । मेरा दाम्पत्य-जीवन भी सुख से कटेगा और सौतेली माँ के डाह, ईर्ष्या और कुप्रयत्न की छाया से दूर रहकर कुमार भी अध्ययन कर सकेगा । सच ही तुम गुणवर्धन हो ।"

मत्री ने इतना ही कहा—

"आप गुणग्राही है । आपका, देश का—सबका हित सोचना तो मेरा कर्तव्य है ।"

बस फिर विवाह का दिन भी आ गया । पहले विवाह जैसी धूमधाम तो क्या होती, फिर भी लकीर तो पीटी ही गई । अनगमाला रानी बनकर आ गई । यहाँ राजा जितशत्रु का विवाह हो गया । विवाह तो हो गया, पर महारानी अनगमाला ज्यादा प्रसन्न नही थी । महाराज जितशत्रु प्रतापी, वैभव सम्पन्न थे । अनगमाला के पिता मकरध्वज से बड़े राजा भी थे, और एक राजा की रानी के लिए वह सब कुछ था जो होना चाहिए । लेकिन अनगमाला मात्र एक राजा की रानी नही, एक पति की पत्नी भी थी । इसी दृष्टि से वह प्रसन्न नही थी । क्योकि पति जितशत्रु की उम्र पचपन की थी और अनगमाला षोडशी बाला थी । जो भी हो अब तो विवाह हो ही गया था । जो हो गया, उसे फिर अनव्याहा नहीं किया जा सकता ।

महाराज जितशत्रु महारानी अनगमाला को पूरा सुख

। इतने वडे राज्य की अनगमाला ही तो एक मात्र रानी, रानी सब कुछ थी। क्योंकि जितशत्रु वहुदाराभोगी राजा थे। अगरक्षको सहित दोनो वन-भ्रमण को जाते, जलविहार ने भी जाते। अन्त.पुर मे भी रस वर्षा होती, पर वे सब म महाराज अपना कर्तव्य समझकर ही करते थे, क्योकि द्धावस्था की ओर वढते प्रौढायु पुरुप मे सहज ही एक राग-सा आ जाता है। यौवन की-सी प्रकृत उमग उसमे फिर हाँ रहती है? यौवन यदि पावस सरिता है तो प्रौढायु मन्द-न्द वहती सरिता और वुढापा तो शान्त सरोवर ही है। जो । हो, रानी अनगमाला तरुणी-युवती थी और राजा जितशत्रु ढ पुरुप थे। फिर भी दोनो का दाम्पत्य जीवन वधी-वँधाई रिपाटी मे वीत रहा था। इस दूसरी रानी को महाराज ने छ विशेप अधिकार भी दे दिये थे। भवन के सभी कर्म-ारियों का न्याय-निर्णय वे ही करती थी। इतना और कि नी की वात राजा टाल नही सकते थे। यह नई रानी को सन्न करने और अनुकूल वनाने का ढग भी था और अपनी द्धपत्व-दुर्वलता को छिपाने का एक परदा भी। कुछ भी हो, नके दिन अच्छे वीत रहे थे। वर्ष प्रति वर्ष यो ही निकलते ले जा रहे थे।

पतगसिह सोलह वर्ष का हो गया। उम्र पाकर उसके प मे भी ऐसा निखार आया कि वह देवकुमार सा लगने गा। गोरा रग, सुन्दर नाक-नक्श और उठा हुआ कद। तनी थोडी उम्र मे ही वह पच्चीस वर्ष का युवक लगता था।

अब तक उसने कई विषयो मे पैठ कर ली थी। उसके आचा
भी उसे पुत्रवत् प्यार करते थे। अपना समस्त ज्ञान दे देने
लिए वे उत्सुक रहते थे। प्रतिभा-सम्पन्न और मेधावी शि
को पाकर हर गुरु की यही इच्छा होती है कि अपना समस्त
ज्ञान धन सुशिष्य को दे डाले। पतगसिंह भी ऐसा ही सुयो
छात्र था।

एक दिन कोई मेला आया। भादो शुक्लपक्ष की एक
दशी का दिन था। सभी किशोर, बालक अपने-अपने मात
पिता के साथ मेला देखने जा रहे थे। छोटे बच्चे अप
माताओ की गोद मे थे। बच्चो की यह चहल-पहल देख रा
जितशत्रु को पतंगसिंह की याद आ गई। शृंगार रस से द
उनका वात्सल्य भाव अब उमड आया। सोचने लगे—'मे
पतंग अब बहुत बड़ा हो गया होगा। आठ-नौ साल यो ही बी
गए। इतने दिनो से मैंने अपने लाडले को देखा भी नही।
ऐसा कठोर बाप हूँ।' बस, राजा ने अपना रथ सजवाया।
अंगरक्षक साथ लिये और उद्यानस्थित सुदूर विद्याभवन
ओर चल दिये। भवन द्वार से दूर रथ रुका। एक अश्वारो
अंगरक्षक द्वार प्रहरी के पास पहुँचा और उसे महाराज
आदेश दिया—

"आचार्य से कहो कि कुमार पतंगसिंह को भे
उनके पिता महाराज जितशत्रु उनसे मिलने आये है।"

आचार्य के पास राजा का सन्देश पहुँचा। आचार्य
सोचा—'भेजूं ? न भेजूं ? कही अनुचित न हो। यह

। पता कि यह आदेश महाराज का ही हो। किसी
हो, मैं क्यो भेजूं कुमार को ? मेरी नियुक्ति मन्त्री गुणवर्धन
की है। उनके आदेश का पालन करना मेरा कर्तव्य है।
द महाराज को अपने पुत्र से मिलना ही था तो मन्त्री को
थ लेकर आते।'

सब बातो पर विचार करके आचार्य ने यही निर्णय
या पतगसिह को विद्याभवन से बाहर नही हो भेजना है।
ने सन्देशवाहक को उत्तर दिया कि वह किसी राजा-वाजा
नही जानता। मन्त्री गुणवर्धन के सिवा वह किसी के साथ
ार को नही भेजेगा। इस वेहूदे किन्तु कर्तव्यनिष्ठ आचार्य के
र को सुनकर राजा जितशत्रु बहुत क्रोधित हुआ। एक दम
भवन लौटा और मन्त्री को बुलाकर रोषपूर्ण स्वर मे
ा—

"मन्त्री ! वह आचार्य का बच्चा सब कुछ हो गया और
कुछ भी नही रहे ? पतगसिह जैसे मेरा पुत्र ही नही है ?
क्या अब हमे अपने पुत्र से मिलने के लिए आचार्य या
हारा सहारा लेना पडेगा ? जानते हो हमारी आज्ञा टालने
क्या दण्ड है ? आचार्य की नियुक्ति तुम्ही ने की है, इसलिए
लो क्या दण्ड दूं उसे।"

एक साथ अनेक प्रश्न कर डाले राजा जितशत्रु ने।
त्री ने प्रत्येक का उत्तर वडी शान्ति से दिया—

"राजन् ! आचार्य ने जो कुछ किया, कर्तव्यनिष्ठा के

कारण ही किया । मैंने ही ऐसी व्यवस्था की थी कि आप
पतगसिंह से नही मिल पायें । क्योकि भावावेश मे मनुष्य
कुछ भूल जाता है । यदि मैं ऐसो व्यवस्था न करता तो
महारानी के साथ भी कुमार से मिलने चले जाते या महार
के सामने कुमार को बुला लेते तो महारानी पूछती कि यह
है । आपको बताना पडता और तब वे यह सोचकर कि मु
अब तक क्यो छिपाया—कुमार के और आपके भी विरुद्ध
जाती । तब आपका दाम्पत्य जीवन और कुमार का
जीवन कलहपूर्ण हो जाता । महाराज ! अब कुछ ही वर्षों
तो बात है । कुमार बहत्तर कलाओ मे पारगत होकर
बडे होकर आ ही जायेगे । तब विमाता कष्ट की आशंक
भी वे मुक्त होगे ।"

राजा ने एक निश्वास छोडा और बोले—

"तुमने जो सोचा और जो किया, सो सब ठीक है।
मैं एक पिता का हृदय भी रखता हूँ । महारानी अनगम
विमाता अवश्य हैं, पर ऐसी हउआ तो नही है, जो कुमार
देखते ही खा जायेगी ?"

"मंत्री ! आचार्य से कह दो कि कोई प्रतिहार या
हारी हमारा सन्देश लेकर जाय तो वे कुमार को अवश्य
दे । विद्याभवन क्या हो गया, कुमार के लिए कारागृ
गया ।"

राजा की ये बाते सुनी तो मंत्री विचार करने लग

'अब तो कुछ होना ही चाहता है। राजा की जीभ पर बैठी होनहार ही बोल रही है। एक दिन वह भी था, जब यही राजा कुमार पर विमाता की छाया भी पड़ने देना नही चाहता था और मेरी व्यवस्था से प्रसन्न होकर कहा था कि मत्री, सच ही तुम गुणवर्धन हो, और आज वही राजा नई रानी का पक्ष लेकर कहता है कि अनगमाला ऐसी हउआ नही है, जो कुमार को देखते ही खा जायगी। अब तो निश्चय ही इस राजा के मन मे रानी का पक्ष है और अब यह काम के वश मे है।'

मत्री को गुमसुम कुछ सोचते देख राजा ने पुन कहा—

"मत्री ! क्या सोच रहे हो ? मै ऐसा मूर्ख नहीं हूँ, जो तुम्हारी व्यवस्था के विपरीत कुछ करूँगा। क्योकि तुम्हारी व्यवस्था कुमार के हित मे ही है। लेकिन यह भी तो बुरा लगता है कि आचार्य मेरी आज्ञा का उल्लघन करे।"

"अब ऐसा नही होगा।" मत्री ने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया। जैसा राजा चाहता था, वैसी व्यवस्था हो गई। राजा ने कुमार पतगसिंह को एकान्त मे बुलाया। उसके सिर पर हाथ फेरा। पुचकारा और अपनी गोद मे बिठाकर बोले—

"पतग ! अब तुम बडे हो गये हो। मेरी गोद मे अब कब तक बैठोगे ? अब तो तुम्हे बहुत जल्दी ही कचनपुर के राजसिंहासन पर बैठना है।"

पतग बोला—

"तात ! चक्रवर्ती अथवा वासुदेव का राजसिंहासन भी आपकी गोद से अच्छा नही हो सकता। मुझे तो जो सुख

आपके अक मे मिल रहा है, वह देव-विमान मे भी न मिलेगा।"

हँसने लगे राजा। बोले—

"पर तुम अब भारी तो बहुत हो गए हो। अपने पि पर बोझ डालोगे ? मेरे लाड़ले। तेरी पितृभक्ति पर मैं मु हूँ। जल्दी-जल्दी अपनी पढाई के सभी सोपान पार कर ले मन लगाकर पढ बेटा! अब जा। तेरे आचार्य तेरी प्रती कर रहे होगे।"

आचार्य के प्रहरी बाहर खडे थे। पतगसिह ने पिता चरणरज मस्तक पर लगाई और द्वार पर खड़े रथ मे गया। बडी देर तक खडे-खड़े राजा कुमार के रथ को दे रहे। उनका मन ऐसा भारी था, जैसे कुमार अनिश्चित क के लिए कही दूर देश जा रहा हो। विदा-वियोग चीज ऐसी है कि किंचित् देर का वियोग भी हृदय को वेध डाल है। हृदय पर पत्थर रखकर राजा ने कुमार को विदा कि था। कुमार के आने-जाने की खबर अन्त पुर तक नही प पाई। राजा का प्रवध ही ऐसा था।

दो वर्ष और बीते। पतगसिह अठारह वर्ष का हो गय उसका रूप कामदेव की कल्पना को साकार करता था उसकी साज-सज्जा भी बरबस अपनी ओर खीचती थी कहावत है कि सूखी लकडी को भी यदि अच्छे कपड़े पह दिये जायँ तो वह भी परी-सी लगती है। इस पर पतग तो कामदेव की कल्पना को साकार करने वाला रूप

राजकुमार था।

रूपवान पतगसिह की एक विरल झलक एक दिन रानी अनगमाला ने भी देख ली। पतगसिह का स्वास्थ्य ऐसा था कि उसके अग-अग से तेज झलकता था। रानी उस पर मोहित हो गई और उसकी दवी-छिपी वासना भड़क उठी। कामपीडिता रानी रथ मे वैठी आहे भरने लगी। वात यह हुई कि रानी अनगमाला दासियो के साथ रथ मे वैठकर सरिता-तट की ओर जा रही थी। कुमार पतगसिह वृक्ष पर लगे फलो को लक्ष्य कर शरसधान कर रहे थे। उनके झिलमिलाते कुण्डल वडे अच्छे लग रहे थे। तभी रानी ने उनकी एक झलक देखी तो कामपीडित होकर आहे भरने लगी। यद्यपि राजा जितशत्रु भी कम सुन्दर नही थे। पर पुरुप का सौन्दर्य उसका यौवनमण्डित स्वास्थ्य होता है और ऐसा सौन्दर्य अव राजा के पास नही था।

आहे भरते हुए रानी ने अपनी दासी से पूछा—

"ऐसा सुन्दर तरुण यह कौन है ?"

"ये तो युवराज है। आपकी दिवगता सौत के पुत्र पतगसिह है।"

"ओह ! तो यह राजभवन मे क्यो नही रहता ?"

"यहाँ विद्याध्ययन कर रहे है।"

दासी का यह उत्तर सुनकर रानी मौन रही। फिर कुछ सोचकर वोली—

"दासी ! तो क्या यह कुमार कभी भवन नही आते ?"

"आते है।" दासी बोली—"लेकिन तभी, जब महारा
अपने आदेश से बुलवाये।"

इसके बाद रानी ने कुछ नही पूछा। अपने मन
भाव छिपा गई और कृत्रिम भाव प्रकट करते हुए बोली—

"मेरा खुद का कोई पुत्र नही तो क्या हुआ। पर
इसी से एक दिन राजमाता बनूंगी।"

इसके बाद रानी ने अपना रथ लौटाया और अन्तः पु
मे आकर अपनी अन्तरंग दासी से बोली—

"माधुरी! जिस दिन महाराज वनलेखन को जाए
उसी दिन तू कुमार को यहाँ बुला ले आना। यह ले अप
पुरस्कार। सब काम चतुराई से करना।"

यह कहते हुए रानी ने अपने कण्ठ का कीमती हा
माधुरी नामक दासी को दिया और बोली—

"मैं समझ गई महारानी कि आप कुमार को क
बुलाना चाहती है।"

कुछ सिटपिटाती हुई रानी बोली—

"क्या समझी माधुरी?"

भोलेपन से माधुरी बोली—

"आप उनसे पूछेगी कि उन्हे अपनी विमाता की या
क्यो नही आती और वे अभी तक आपसे मिलने क्यो न
आये?"

"तू ठीक समझी माधुरी!" रानी बोली—"यह
पूछने की बात है ही कि मेरा पुत्र इतना बडा है और मैं उस

दर्शनो से वचित रहूँ। जाने क्यो, महाराज ने उसे मुझसे दूर रखा ?"

नई रानी के मन मे पाप था। वह वडी वेतावी से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी, जिस दिन महाराज जितशत्रु कचनपुर से वाहर हो। भावी वडी प्रवल होती है। आखिर वह दिन एक दिन आ ही गया। माधुरी दासी रथ लेकर विद्याभवन पहुँची और आचार्य को सन्देश दिया कि महाराज ने कुमार पतगसिह को वुलाया है। आचार्य ने कुमार को भेज दिया। कुमार जव भवन की सीढियाँ चढने लगे तो दासी से पूछा—

"तो क्या पिता महाराज राजसभा मे नही है ?"

"नही कुमार !" दासी ने वताया—"वे अन्त पुर मे आपकी विमाता के पास है।"

कुमार अन्त पुर मे पहुँचा। अस्त-व्यस्त से कपडे पहने अनगमाला पलग से उठी और वडे मीठे स्वर मे वोली—

"आओ कुमार ! वैठो।"

इसी स्वर के साथ दासी भाग गई। वड़े कक्ष मे अव दो ही प्राणी थे। रानी अनगमाला एकटक पतगसिह के भरते यौवन, मसिभीगे ओठ और अनियारे नेत्रो को देखती रही। फिर वोली—

"वैठोगे नही ? यहाँ मेरे पास पलंग पर आओ।"

कुमार पलग के पास रखी चौकी पर वैठा और वोला—

"मेरा स्थान आपके चरणो मे है। आप आज्ञा करे

माता कि आपने मुझे क्यों बुलाया ? पिताजी आपके पास वे कहाँ गए ?"

अनंगमाला खिलखिलाकर हंस पड़ी और बोली—

"मुझे क्या मालूम था कि तुम इतने भोले हो ? तुम्हारा भोलापन भी मुझे बड़ा मादक लगता है। अब मैं स्पष्ट ही बताती हूँ। मै तुम्हे अपने हृदयासन पर बैठने संकल्प कर चुकी हूँ।"

"माता ! यह आप कैसा प्रलाप-सा कर रही हैं बौखलाते हुए कुमार ने कहा—"आप मेरी माता है औ आपका पुत्र हूँ। ऐसा तो सोचना भी पाप है।"

हँसी रानी अनंगमाला। हँसते हुए बोली—

"इतने मूर्ख न बनो पतग ! अपनी उम्र देखो और उम्र से तुलना करो तुम्हारी मेरी जोडी विधाता की व हुई है। जाने तुम्हारे बूढे बाप को क्या सूझा, जो तुम्हारा व्याह नही किया। अब हम दोनो राजा की सुधार देंगे।"

"नही माता ! अब कुछ न कहना।" कहते-कहते कु ने अपने दोनो हाथ, दोनो कानो पर रख लिए और चलने घूमा। रानी ने कड़ककर कहा—

"ठहरो पतग ! मेरी पूरी बात सुनलो पहले। मै यों न जाने दूंगी। तुम मुझे बार-बार माता किस अधिका कहते हो ? मैंने तुम्हे जन्म ही नही दिया तो तुम मेरे पुत्र हो गए ?"

पतगसिह ने सयत स्वर मे कहा—

"विचार करो। हर पुरुष के लिए परदारा माता सम है। जन्म देने वाली तो जननी ही होती है और जो जन्म न दे, वह माता तो होती ही है। फिर आप तो नियमत. मेरी विमाता भी है। आप मेरी जननी की जगह आई है। मेरे लिए पुत्रदृष्टि ही रखिए।"

"तुम्हारे इन उपदेशो का मुझ पर कोई प्रभाव नही पडेगा।" रानी ने नथुने फुलाकर तैश मे कहा—"इतना और सुन लो कि मेरी याचना को ठुकराना अपनी मौत को बुलाना है। मौत से डरो। इस समय मैं खुलकर तुमसे भोग-याचना कर रही हूँ और फिर तुम मुझसे जीवन माँगोगे। क्या जीवित रहना नही चाहते? मौत से किंचित् भी नही डरते?"

दृढता के साथ पतगसिह ने कहा—

"माता! जिन्दगी ऐसी मूल्यवान वस्तु कभी नही हुई कि चरित्रवीर उसकी याचना करे। मौत मे भी ऐसी शक्ति सामर्थ्य कभी नही आ सकती जो धर्मवीरो को धर्मपथ से डिगा सके।"

रानी ने पैंतरा बदला—

"मत तडपाओ प्यारे! कंचनपुर की रानी तुम्हारी दासी बनना चाहती है।"

यह कहते हुए रानी कामावेश मे कुमार से लिपट गई। कुमार पतगसिह ने पूरी शक्ति के साथ रानी को धक्का दिया और वह औधे मुंह धरती पर गिरी। कुहनी मे चोट आई।

माथे पर खून आ गया । सर्पिणी-सी फुंकारती हुई रा
उठी । देखा पतंगसिंह जा चुका था ।

पतंगसिंह सीधा विद्याभवन पहुँचा और आचार्य
आद्योपान्त घटना सुनाई । आचार्य जी ने घटना का स
अंकित करके उसका भविष्यफल निकाला और कुमार
बोले—

"कुमार ! क्रूर ग्रह तुम पर छा रहे है। तुम पर भी
संकट आने ही वाला है। ऐसा कि तुम्हारे प्राण भी जा स
है। लेकिन जैसे बहते पानी को बाँध बनाकर दिशा बदल
जाती है, वैसे ही तुम्हारे ग्रह प्रभाव को एक मोड देना हो
यदि तुम्हारा विवाह नही हुआ होता तो तुम्हारे प्राण आज
बचते ।"

"मेरा विवाह ?" कुमार ने आश्चर्य से पूछा ।

आचार्य बोले—

"हाँ कुमार ! जब तुम चार महीने के थे, तभी तुम्ह
विवाह जनकपुर की राजकन्या कमलावती के साथ हो
५ । तुम्हारा भाग्य उसके साथ जुड गया है । उसके भाग्य
वैधव्य नही है, इसलिए तुम मरोगे तो नही । पर प्राण स
को टालने के लिए तुम्हे अभी इसी समय कचनपुर छोड
है । जल्दी करो कुमार ! जल्दी ही पूर्वदिशा को प्रस्
करो । यहाँ के हालात देखकर सभव है, मैं भी शीघ्र
तुम्हे आकर मिलूं ।"

कुमार उठा । आवश्यक सामग्री ली । पाँचो श

सम्हाले और चल दिया। 'तुम्हारा मार्ग शुभ हो', यह आशीष देते हुए आचार्य ने कहा—

"वत्स पतग ! कही रुकना मत। सध्या तक तुम बहुत दूर निकल जाओगे। रात को कही भी सुरक्षित स्थान देखकर रुक जाना।"

गुरु-शिष्य—दोनो की आँखें गीली थी। कुमार को विदा करके आचार्य भीतर आये और आगे क्या होगा, इसकी प्रतीक्षा करने लगे। बार-बार वे अपने बनाये ग्रह-चक्र को भी देख लेते।

इधर सर्पिणी-सी फुकारती हुए रानी अनगमाला ने अपने कपडे फाड़ डाले। जगह-जगह अपने नखो से नखक्षत से भी कर लिये और बाल बिखेर कर वही धरती पर लेट गई। उसकी चूडियां तो तभी टूट गईं थी, जब कुमार ने उसको धक्का दिया था। माथे की वेणी उसने अपने हाथ से विकृत कर ली थी।

मध्याह्न को राजा जितशत्रु आखेट-क्रीडा से लौटे। सीधे अन्त:पुर गए और रानी को यो पडे देखा तो सहम गए। साहस करके आगे बढे तो धीरे से पूछा—

"प्राण प्रिये ! यह क्या देख रहा हूं मैं ? क्या किसी ने तुम्हारी छोटी-सी भी आज्ञा का उल्लघन कर दिया ?"

रानी उठकर बैठी हो गई और मुस्कराई। फिर जोरो से हँसी और नाटकीय प्रलाप करने लगी—

"आओ ससुर जी ! बड़े अधर्मी हो तुम ? अपनी पुत्र-

वधू को प्राणप्रिये कहते हो ?"

हो-हो करके फिर हंसी रानी और फिर प्रला किया—

"अरे हाँ, मैं तुम्हारे पतग की भामिनी हूँ । अब मुझे मत छूना । पर तुम मेरे शव को तो छूओगे ही । तुम्हारे अन्तिम दर्शन करने के लिए ही बैठी थी । आओ देवता ! मुझे अपनी चरण रज दो, ताकि मैं शान्ति से मर सकूं ।"

रानी का यह प्रलाप सुनते हुए राजा का हृदय जोरों धडकने लगा । राजा घुटनो के बल धरती पर ही बैठ ग और रानी का सिर अपनी जघा पर रख कर बोले—

"प्रिये ! तुम्हारे शत्रु मरेंगे । उनका शव चील खायेंगे । बहुत कुछ समझ गया हूँ मैं । बताओ, यह सब कै हुआ । पतंग के जीवन के अब कुछ ही क्षण ही समझो । मु पूरी बात बताओ, वह यहाँ आया क्यो ?"

रानी बोली—

"उसे मारने से क्या लाभ ? मैं अब जीऊँगी भी कि मुंह से ? मुझे ही मरना है अब । तुम्हारा पुत्र फले-फूले उसने मेरे साथ बलात्कार करने के प्रयास मे मेरा शरीर छू है । मेरे कपडे फाडे है और और ।"

कहते-कहते रानी नाटकीय ढग से रो पडी और फफ हुए बोली—

"मेरी अर्थी मेरे सामने ही सजाओ । अब मैं जीवि नही रह सकती ।"

यह कहकर प्रपचिनी रानी ने अपना सिर तीन बार धरती पर पटका। खून टपका। राजा करुण और रौद्र रस की धारा मे वह गए। रानी का सिर पकड़ कर बोला—

"यह क्या पागलपन है रानी ? तुम जीओगी। इसलिए जीओगी कि मुझे भी जीना है। तुम मेरी प्राण हो। तुम न रहोगी तो मैं भी तो नही रहूँगा। तुम्हे मेरी सौगन्ध। सब कुछ बताओ मुझे।"

अश्रुधारा वहाते हुए रानी कहने लगी—

"अब क्या कहूँ नाथ ! यौवन के नशे मे झूमता हुआ, कुमार मेरे कक्ष मे आ गया। मैं तो उसे जानती भी न थी। भौचक्की-सी देखती रही कि यह कौन आ गया। मैंने उसे फटकारा—कौन हो तुम ? कैसे आये मेरे कक्ष मे ? वह निर्लज्ज बोला—मै तुम्हारा प्राण हूं। कचनपुर का युवराज हूँ मैं। वैसे तो राजा जितशत्रु का पुत्र हूँ पर तुम्हारा तो कहते-कहते वह निर्लज्ज मेरे पास आ गया। लिपट गया मुझमे। मैंने धक्के मारे.चीखी-चिल्लाई और जव तक दासियाँ दौडी-वह यह कहते हुए भाग गया कि तुम वच नही सकती। मैं तुम्हे अपनी बनाकर छोडूंगा।

"स्वामी ! क्या मुझे अब जीवित रहना चाहिए। अब तो मैं आपकी पुत्रवधू बन गई। मर जाने दो मुझे।"

राजा के चरणो मे गिर पडी रानी और पुन रोने लगी। राजा ने कडक कर कहा—

"क्षत्राणी ! अपनी शक्ति को पहचानो ! यो कायर न

बनो। पतग अब इस ससार मे नही रह सकता। मैं उसे मृत्यु-दण्ड दूँगा और उसका कटा सिर तथा उसकी आँखे तुम्हारे सामने होगी।"

यह कहते हुए राजा ने वही रानी के सामने प्रतिहार बुलाया और आदेश दिया—"विद्याभवन जाओ! और पापात्मा पतंग को जजीरो मे जकड कर मेरे सामने लाओ।"

रानी मन ही मन इतनी हर्षित हुई मानो वह त्रिलोकी का राज्य पा गई हो। प्रतिहार सीधा आचार्य के पास पहुँचा कुमार वहाँ नही था। राजसेवक आचार्य को लेकर ही राजा के पास चले आये। राजा ने आचार्य से पूछा—

"उस कुलागार पतग को कहाँ छिपा दिया ?"

आचार्य ने अभिनय करते हुए कहा—

"पृथ्वीनाथ ! मैं स्वय चकित हूँ। मुझसे कुछ कहे बिना वे सवेरे से ही गायब है। अभी तक नही लौटे। जाने कहाँ गए ?"

राज बोला—

"हूँ। उसकी मौत उसे अब ढूंढ ही लेगी। जायेगा कहाँ ? तुम्हारा दोष ही क्या है आचार्य। अच्छा होता यह जन्मते ही मर जाता।"

इतना कह उसने अपने सशस्त्र सैनिकों को आदेश दिया—

"पूरा कन्चनपुर छान डालो। चारों दिशाओं मे खोजो पतंग जहाँ भी मिले, उसका सिर और आँखें तुरन्त ले आओ

तुम सब मे जो भी यह काम करेगा, उसे बहुत बडा पुरस्कार दिया जायगा। नही तो तुम सबकी मौत निश्चित है।"

राजसैनिक अपने काम मे लग गए। आचार्य श्री अपने घर आये और पडितानी से बोले—

"पडितानी! जो कुछ खाने को घर मे हो, मेरे साथ बाँध दो। कुछ धन भी दो। मैं अनिश्चितकाल के लिए जा रहा हूँ। पन्द्रह दिन तक न लौटूं तो समझ लेना कि तुम विधवा हो गई हो।"

ब्राह्मणी फटी-फटी आँखो से आचार्य को देखने लगी और फिर रो पडी। बोली—

"स्वामी! मुझे किस अपराध का दण्ड दे रहे हो? मैं आपको कही न जाने दूंगी।"

आचार्य बोले—

"प्रिय! तुम ब्राह्मणी हो और साथ ही पतिव्रता सन्नारी। पति की आज्ञा का पालन करो और यह विश्वास करो कि तुम्हारा पति जो कुछ करेगा, वही करेगा, जो कर्तव्य निष्ठा की परिधि मे आता है। तुम्हारे पुण्य और तुम्हारा धर्म तुम्हारे सुहाग की रक्षा करेगे यह विश्वास भी रखो और मुझे कर्तव्यपालन के लिए कटकपूर्ण पथ पर जाने दो। इस समय कुछ मत पूछो और मेरे बारे मे किसी को कुछ बताना भी नही।"

ब्राह्मणी ने आचार्य की अनुज्ञा का यथावत् पालन किया—पाथेय और मार्गव्यय लेकर आचार्यश्री उसी दिशा मे चल दिये, जिस दिशा मे उन्होने पतंगसिंह को भेजा था। उन्हे विश्वास था कि रात को कही सोता हुआ कुमार मुझे अवश्य मिल जायगा। आचार्य चले जा रहे थे और भाग्यचक्र उन्हे चला रहा था। □

3

कुछ देर रात मे भी पतंगसिह चला और जब थक ग
तो एक पेड़ के नीचे बसेरा लिया। थका-हारा था, सो नं
गहरी आई। चाँदनी रात थी। वन का पत्ता-पत्ता दूध-
धवल चन्द्रिका मे नहा रहा था। चारो ओर दृष्टि घु
हुए पतगसिह के गुरु आचार्य भी इसी ओर चले आ रहे थे
आधी रात के बाद वे उसी स्थान पर आ लगे, जहाँ पतगरि
सो रहा था। उसे यो ही बडी जल्दी पहचान गए और उ
के पास बैठ गए। सोचा, 'इसकी रक्षा करनी है। यह सो
रहेगा और मैं जागता रहूँगा। आज की रात इस पर
ग्रहो की छाया है। यह रात बीत गई तो इस पर आया प्रा
सकट भी बीत जायगा।' आचार्य यह सोच ही रहे थे कि रा
जितशत्रु के चार अश्वारोही सैनिक भी आ धमके। पतगसि
आठ वर्ष की अवस्था से ही गुरु के पास एकान्त भवन
विद्याध्ययन करता था, इसलिए सैनिक उसे पहचानते न
पर गुरु आचार्य को जानते थे, सो यह पतंगसिह ही हो
ऐसा निश्चय कर सैनिको ने गुरु शिष्य को चारो ओर से
लिया। राजा से पुरस्कार पाने के लोभ मे सैनिको ने ठो
मारकर पतगसिह को जगाया और अपने-अपने खड्ग निक
लिये।

आचार्य ने गर्जना की—

"ठहरो! मेरे रहते तुम इसे नही मार सकते। पहले मेरे प्राण लो, तब इसे मारना।"

एक सैनिक बोला—

"आपको क्यो मारें? एक निरपराध ब्राह्मण को मारकर ब्रह्महत्या का पाप अर्जित करें?"

आचार्य बोले—

"ऐसा ही पापार्जन तो तुम पतगसिह को मारकर कर रहे हो। पहले बैठ जाओ। हम दोनो अब तो तुम्हारे चगुल मे ही है। भागकर कहाँ जायेगे? चाहे जब मार देना। पर पहले बात तो सुन लो।"

चारो सैनिक बैठ गए। आचार्य ने कहना शुरू किया—

"प्राण जितने ब्राह्मण को प्यारे होते है, उतने ही सब जीवो को होते है। किसी भी जीव को मारने से एक-सा ही पाप होता है। सैनिको! पतगसिह निरपराध है। उसे मत मारो।"

दूसरा सैनिक बोला—

"आचार्य! आपकी सभी बाते ठीक हो सकती है। लेकिन राजाज्ञा का उल्लघन हम कैसे कर सकते है? सैनिक का कर्तव्य ही राजाज्ञा का पालन करना होता है। दूसरे, राजा से हमे इसे मारने का भारी पुरस्कार भी मिलेगा।"

सैनिक और आचार्य की बातचीत सुनकर पतगसिह भी उठकर बैठा हो गया और दोनो पक्षो की बाते बडे ध्यान

से सुनने लगा। सैनिक को उत्तर देते हुए आचार्य ने कहा—

"सैनिको ! मैं मानता हूँ कि अपने कर्तव्य का पाल करना धर्म है और धर्म का पालन करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। जो मनुष्य अपने कर्तव्य से गया, उसका जन्म लेना व्यर्थ हुआ। पर तुम अपना कर्तव्य देखो कि क्या है तुम्हारा मुख्य कर्तव्य है, पाप्य-पुण्य का विचार करके जीवन यापन करना। राजाज्ञा का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य इसी लिए बना कि तुम्हे अपना पेट पालना है। लेकिन कभी-कभी राजाज्ञा का उल्लंघन करना भी कर्तव्य हो जाता है। वह इसलिए कि ऐसी राजाज्ञा का उल्लघन करने से न तो तुम्हारी रोजी-रोटी पर आंच आयेगी, न पुरस्कार घटेगा और सबसे बड़ी बात होगी कि तुम पाप का अर्जन करने से बचोगे। अब बोलो, राजाज्ञा पालन करना कर्तव्य है या उसका उल्लंघन करना। पालन करने मे पुण्य की कमाई है और उल्लंघन करने मे धर्म का अर्जन। इससे तुम्हारा भविष्य भी बनेगा।

पतगसिह को अभी मरना नही था, इसलिए आचार्य की बातो का सैनिको पर प्रभाव हुआ। वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे। कुछ देर विचार करने के बाद एक ने पूछा—

"आचार्य देव ! स्पष्ट करके बतायें कि कुमार का वध करने वाला काम हमारा क्या भला करेगा और कैसे। हमें तो अपनी भलाई ही देखनी है। अपनी भलाई के कारण ही राजाज्ञा का पालन करते है।"

आचार्य ने कहना शुरू किया—

"मेरी एक-एक वात ध्यान से सुनो। पहली वात तो
ाह कि कुमार पतगसिह उज्ज्वल चरित्र की साक्षात प्रतिमा
ौर धर्मवीर है। दुष्टा रानी अनगमाला ने 'इन्हे राजा वुला
ाहे हैं' के वहाने अपने महल मे वुलाया और इनसे भोग-
ाचना की। लेकिन कामी राजा ने रानी को निर्दोष माना
ौर अपने पुत्र का वध कराने को तैयार हो गया।

"सैनिको ! कुमार पतगसिह अपने पैने वाणो से अथवा
ासि चालन से दस-वीस सैनिको के छक्के छुडा सकता है, जव
के तुम तो चार ही हो। इसे अभी जीना है। यह वहुत वडा,
ार देशो का राजा वनेगा और कचनपुर के राजसिहासन पर
ी यही एक दिन वैठेगा। राजा वनने पर यह तुम्हे चार-चार
ाँव की जागीर देगा। इसके मारने पर राजा जितशत्रु क्या
ुम को इतना वड़ा पुरस्कार दे सकते है ?"

"और सुनो। एक दिन राजा जितशत्रु पछतायेंगे और
ोचेंगे कि अपने पुत्र का वध कराके मैंने अच्छा नही किया।
ैसे समय जव पतंगसिह उनसे मिलेगा, तव वे कितने प्रसन्न
ोगे, इसका अनुमान करो। आखिर तो पतगसिह उनका पुत्र
ी है। उनकी इस प्रसन्नता का कारण तुम वनोगे और राजा
पनी आज्ञा का उल्लघन जानकर तुमसे कितने प्रसन्न होगे!

"सैनिको ! चार-चार गांवो की जागीर तो वाद की
ात है। फिलहाल तुम कुमार के सव आभूपण ले जाकर
ाजा को प्रमाण दो कि हम उसे मारकर ये आभूपण ले आये
', हरिण की-सी आंखे है पतग की। किसी हरिण की आंखें ले

जाकर दुष्टा रानी को दिखा देना। ये आभूषण तुम्ही मिलेंगे। फिलहाल का यही पुरस्कार समझो। इस तुम्हारी नौकरी भी नही जायेगी और राजा से पुरस्का मिलेगा। भविष्य तो तुम्हारा उज्ज्वल है ही।"

आचार्य की बात सैनिको की समझ मे आ गई। उ गुरु-शिष्य को प्रणाम किया और हिरन की खोज मे व भीतर चले गए। अब ब्रह्ममुहूर्त की बेला थी, रात बीत थी, पर उसका भागता हुआ अन्धकार शेष था। सैनिको चले जाने के बाद आचार्य और पतगसिह आगे बढे। सरोवर पर नित्यकर्म से निवृत्त हुए। धार्मिक क्रियाएँ की आचार्य जो पाथेय साथ लाये थे वह दोनो ने मिलकर खा फिर आचार्य ने पतंग से कहा—

"वत्स ! मै तो अब कचनपुर लौटूंगा। तुम्हारे प्राण देने का सकल्प करके आया था और पडितानी से कह आया था कि अमुक समय तक न लौटूं तो मुझ मरा स लेना। पर पुण्य सबकी रक्षा करते है। हम दोनो को बचना था, सो सैनिक मान गए। अब तुम जाओ। तुम्हे समझाऊँ, तुम स्वय ही समझदार हो। अपना समय गुजार लोगे। सुदिन तुम्हे एक दिन कचनपुर लौटा लायेगे।"

यह कह कर आचार्य उठे। पतग ने उनके चरण प कर कहा—

"गुरुदेव ! आपने मुझे विद्या ही नही दी, जीव दिया। मेरा रोम-रोम आपका ऋणी रहेगा।"

पतग की बात का कोई उत्तर न देते हुए आचार्य ने कोई भूली बात याद करके कहा—

"अरे हाँ, यह तो मैं भूल ही गया। ये कुछ रत्न हैं। इन्हे रख लो। समय पर काम आयेंगे। वन मे इन्हे कोई नही पूछता, पर मनुष्यो की भीड मे इन पत्थरो का भी बडा सहारा है।"

"गुरुदेव ! यह मूल्यवान रत्न मैं ले लूं ?" पतगसिंह बोला—"यह तो आपकी निधि है। आपको भी तो जरूरत पडेगी।"

आचार्य ने पतग के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—

"पगले ! जीता जागता रत्न तो तू है। यह पत्थर तुझ से मूल्यवान तो नही है ? एक पिता को जैसे सुपुत्र को पाकर प्रसन्नता होती है, वैसे ही गुरु सुशिष्य को पाकर भाग्यशाली बनता है। मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण तो लगोटी बाँधकर ही आत्मरत्न को पाने का प्रयास करता है। एक बार तुम्हारे पितामह ने ये रत्न मुझे भेंट मे दिये थे। तभी से रखे है। आज इनका सदुपयोग हो गया। अच्छा तो अब जाओ वत्स !"

गुरु-शिष्य कडा हृदय करके विपरीत दिशाओ मे मुड गए। दोनो मुड-मुड कर देख लेते थे। यही मोह है, जो बार-बार पथ से मोडता है। पर वीर इस मोह को एक झटके से तोडते है और अर्द्धवीर मुड-मुड़ कर कभी पथ को और कभी मोह बधन को देखते है। बहुत-से तो मरणशय्या पर पड़े-पडे

भी नश्वर देह को छोडते समय रोते है—हाय हम मर रहे और मृत्यु जयी मुनि अनशन करके—सलेखना सथारा द्वा मृत्यु के स्वागत हेतु तैयार बैठे रहते हैं। मनुष्य जैसा चाहे वैसा बन सकता है। जो भी हो, जब गुरु-शिष्य एक दूसरे क आँखो से ओझल हो गए तो मोह बन्धन भी टूट गया। फि दोनो अपने-अपने पथ पर बढ चले। एक को कचनपुर पहुँ कर अपनी पडितानी से मिलने की जल्दी थी और दूसरे क कही पहुँचने की जल्दी नही थी, क्योकि उसे तो चलते रहन था। थक जाने पर ठहर जाना और फिर चलते रहना।

× × ×

हिरण की आँखे लेकर चारो सैनिक यथासमय राज जितशत्रु की सभा मे पहुँचे। अन्य दिशाओ के सैनिक खाल हाथ लौटे थे। चारो ने अपने पुरुषार्थ की डीग मारते हु कहा—

"अन्नदाता ! बड़ी दूर जाकर पकड़ा पतंगसिह को उसे मार कर उसके ये समस्त आभूषण और आँखे ले आये।"

राजा बडा प्रसन्न हुआ। हिरन की दोनों आँखे रानी अनगमाला के पास भेज दी। पतगसिह के सब आभूषण सैनिको को ही लौटाते हुए राजा ने कहा—

"इन्हे तुम आपस मे बाँट लो। और भी पुरस्कार मिलेगा। मुझे विश्वास हो गया कि तुमने उसे यमलोक पहुँचा ही दिया। लेकिन मेरा आदेश तो सिर-आँखे—दोनो के लिए था। फिर उस कपूत का सिर क्यो नही लाये ?"

पहले तो सैनिक मकपकाये। लेकिन सन्देह न हो, इस लिए तुरन्त उत्तर देना था, सो बात बताकर एक ने कहा—

"पृथ्वीनाथ ! कुमार का वध करके हमने उसका सिर भी काट लिया था। चील-कौए और स्यार जुड आये। बडा बीभत्स दृश्य था। सिर से आँखे अलग करके हमने अलग रखी ही थी कि एक स्यार उसका सिर उठा ले गया। फिर उसका पीछा करना हमने उचित नही समझा, सो ये आँखे ही ले आये।"

राजा को इस मनगढन्त कहानी पर भी विश्वास हो गया। दैव अपनी इच्छानुसार सब की मति बदल देता है। इधर रानी अनगमाला हिरन की आँखो को सामने रखे बैठी थी। उसकी दृष्टि मे तो वे पतंगसिह की ही आँखें थी। उसकी छाती तो ठण्डी हो गई, पर मन की डाह नही मिटी। बदला लेने मे नारी पुरुष से अधिक क्रूर और कठोर होती है। बीती घटना को याद करते ही वह फुकार उठी। दोनो आँखें एडी के नीचे दबाकर मसल डाली और बडबडाई—

'मेरे तिरस्कार का फल भोग। कुत्ते की मौत मर कर क्या लिया तूने ? तेरे जिन मादक नेत्रो ने मुझे तडपाया, उन्हे मैं अपने पैरो से कुचलती हूँ।'

निर्जीव आँखो को मसल कर ही कुलटा रानी को बडी शान्ति मिली। पतगसिह के निधन की चर्चा घर-घर मे फैल गई। नगर के कुछ लोग रानी को गालियाँ देते थे और कुछ राजा की निन्दा करते थे। पतगसिह के चरित्र पर किसी को

सन्देह नही था। सब यही सोचते थे कि दैव ने जैसे-तैसे
हमे युवराज दिया और उसी दैव ने क्रूर ढंग से छीन
लिया। अब कचनपुरवासियो के लिए पतंगसिह एक ना
भर रह गया था।

× × ×

पतगसिह को बहुत लम्बा वन पार करना पडा। ती
दिन तीन रात मे वन की सघनता दूर हुई तो फिर जनशू
कच्चा पथ आ गया, जिस पर बैल गाडियाँ, ऊंट, खच्
आदि चलते थे। पतंगसिह ने यही पथ पकड़ लिया। पै
चलने वाले भी मिल जाते। पर यह मार्ग कम चलता थ
क्योकि एक नगर से दूसरे नगर पहुँचने का यह एक ल
पथ था। इसी मार्ग पर बहुत दिन तक चला पतगसिह। इ
दिनो तक अन्न तो मिला ही नही था। कभी झरबेरी के
खा लिए, कभी गूलर और वटफल खा कर भूख मिटा
यह भी एक तप था। कुछ न मिलने पर कुमार पतगसि
पत्ते भी खाये।

लम्बा पथ पार करके पतंगसिह वसन्तपुर नामक
नगर मे पहुँचा। यह नगर कंचनपुर से छोटा था, पर
परिवारों का सुन्दर नगर था। यहाँ पर राजा नरसिंह
करता था। रानी थी सुन्दरी। राजा नरसिंह के एक
थी, नाम था रत्नमजरी। बड़ी चचल थी राजकुमारी
मंजरी। राजा सुशासक था।

मार्तण्ड अग्निहोत्री नाम के एक विप्र भी वस
में रहते थे। वे विद्वान् थे। राजसमाज मे उनका सम्मान

तरस्वती के माथ लक्ष्मी की भी उन पर कृपा थी। उनका
पुत्र मदन अग्निहोत्री अभी पढ रहा था। कहने योग्य विशेष
बात यह थी कि विप्रसुत मदन और राजसुता रत्नमजरी साथ-
साथ एक ही आचार्य के पास पढते थे। धनी श्रेष्ठि परिवारो
के वालक-वालिकाएँ राजकुमारी तथा मदन के सहपाठी थे।
छोटे स्तर के लोगो के लिए अलग विद्यालय था।

पतगसिह जव वसन्तपुर पहुँचा तो सवसे पहले विप्र
मार्तण्ड से ही टकराया। माथे पर तिलक, कन्धे पर जनेऊ
और लम्वी चोटी देखकर पतग ने उन्हे प्रणाम किया। उन्होने
भी आशीर्वाद देकर पूछा—

"कौन हो? परदेशी मालूम पडते हो।"

पतग ने विनम्र होकर उत्तर दिया—

"कचनपुर के एक ठाकुर का पुत्र हूँ। नौकरी की
तलाश है। वस रोटी-कपडा ही चाहिए।"

"ऐसी क्या वात है। हम गाँठ दम्म (जेव खर्च) भी
देंगे। मेरे पास ही रह जाओ। काम भी कोई खास नही।
मेरा मदन तुम्हारी ही वरावर का है। व्याकरण, निघटु पूरे
कर लिये। ज्योतिष पढ रहा है। वस, उसी का हाथ वटा
दिया करना।"

पतगसिह ने अभिनय किया—

"महाराज! आपका और आपके पुत्र का दास वनकर
रहूँगा, पर मुझ मे एक दोष है कि मैं मूरख हूँ। मोटी वातें
भी नही समझ पाता। सो प्रार्थना यह है कि कोई वुद्धि

सम्बन्धी सेवा मुझसे मत कराना।"

विप्र बोले—

"इसकी चिन्ता मत करो। हमारे पास रहकर भी क्य मूर्ख बने रहोगे ? हम तुम्हे भी पढा देंगे।"

पतंग बोला—

"महाराज ! आपकी कृपा से चार अक्खर मैं भी सी जाऊँ तो अहसान मानूंगा। पर मेरी मूर्खता के कारण ही त पिता ने मुझे मार-मारकर घर से निकाल दिया है। मैं तो ज हूँ। क्या करूँ ? मेरे हाथ की बात तो है नही।"

"बडे भोले हो।" विप्र मार्तण्ड अग्निहोत्री बोले—"त अब तुम्हारा यही काम रहेगा कि मदन की पोथियाँ लेक उसके साथ विद्यालय चले जाया करना। वहाँ आचार्यजी क सेवा करना। छात्र-छात्राओ का काम कर दिया करना। यि गुरुजी प्रसन्न हो गए तो तुम्हे कुछ सिखा-पढा देगे। राजकुमार भी वही पढती है। वह यदि प्रसन्न हो गई तो तुम्हे राजा वे यहाँ नौकरी दिलवा देगी।"

"जो आप कहेगे, सो ही करूँगा।" यह कह हुए पतंगसिह विप्र मार्तण्ड अग्निहोत्री के पीछे-पीछे चल दिया। वे भी अब घर जाकर इस नये नौकर को मदन क सौंप देना चाहते थे।

मार्तण्ड अग्निहोत्री से मिलते ही पतगसिह के मन जाने क्यो यह प्रेरणा उठी कि मैं मूर्ख बनकर ही इस नये नग मे रहूँ। सो उसने अपने को मूर्ख बताया। लेकिन विप्र वे

पीछे-पीछे चलते हुए पतंगसिंह ने सोचा कि मुझे तो ये ब्राह्मण ही मूर्ख लगते हैं। एक तो इन्होंने यह नहीं सोचा कि जो मूर्ख होगा, वह अपने को मूर्ख नहीं कहेगा। जो यह जानता और कहता है कि मैं मूर्ख हूँ, वह बुद्धिमान है, क्योंकि जानना-मानना बुद्धिमान का ही गुण है, मूर्ख का नहीं। दूसरे अग्निहोत्रीजी ने यह नहीं सोचा कि साक्षर बनकर मूर्ख विद्वान् तो बन सकता है, बुद्धिमान नहीं। मदन के साथ विद्यालय जाकर मैं पढ भी लूँगा तो क्या बुद्धिमान बन जाऊँगा ? विद्या अर्जित की जाती है और बुद्धि जन्मजात होती है। जो भी हो, मदन तथा अन्य नागरिकों के सामने मुझे मूर्ख बनने का सफल अभिनय भी करना है। केवल कहने मात्र से मुझे कौन मूर्ख समझेगा ?

यों सोचते-विचारते मार्तण्ड अग्निहोत्री का घर भी आ गया। द्वार पर मदन मिला। सिर पर पोथियों का बोझ रखे वह विद्यालय जा ही रहा कि पिता ने पुत्र से कहा—

"बेटा मदन ! पोथियों का यह बोझ इसे दे दे। आज से इसे हमने अपने यहाँ रख लिया है। बेचारा अपढ और मूरख है। पडा रहेगा। इसके दो रोटियाँ खाने से क्या घटेगा ?"

मदन ने पोथियों का बोझ पतगसिंह को दे दिया और अपने पीछे आने को कहा। जान-बूझकर पतगसिंह बहुत पीछे रह गया। मुडकर मदन ने आवाज दी—

"जल्दी दौडकर आ। इतना धीरे चलता है ?"

पतंग एडी उचकाकर दौडा और एडी उचकाते हुए ही मदन से आगे-आगे दौड़ता हुआ दूर निकल गया। मदन ने आवाज देकर खडा किया। फिर पास आकर पूछा—

"बडे मूर्ख हो। तनिक भी ज्ञान नही ?"

पतगसिह ही-ही करके हँसने लगा। मदन ने डाँटा और कडककर पूछा—

"नाम बोलो, क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मदन!" पतग ने ही-ही करके उत्तर दिया। मदन झल्ला गया। बोला—

"मूर्ख! यह तो मेरा नाम है। पिताजी से सुन लिया होगा। अपना बता, अपना।"

बडी देर तक पतगसिह 'अपना-अपना' कहता रहा, पर नाम नही बताया। अभिनय करे तो कुछ कसर न छोडे, यही सोचकर पतगसिह मदन की दृष्टि मे पूरा बुद्धू बन जाना चाहता था। मदन को पाठशाला जाने को देर हो रही थी। सो कुढकर कहा—

"अच्छा मेरे साथ-साथ चल। मैं ही तेरा कुछ नाम रखूँगा।"

पतंगसिह एडी उचकाकर ही चला। जैसे चलते सम- ऊँट की तिकोनी पीठ ऊपर नीचे होती है, वैसे ही एडी के सहारे उचक कर चलने से पतगसिह का सिर व कन्धे ऊँचे-नीचे होकर हिलते थे। मदन का ध्यान उसकी चाल पर गया तो मन-ही-मन हँस दिया और बोला—

"अच्छा, मैंने तेरा नाम आज से एड़ू रख लिया। अब तू एड़ू हो गया। एडी उचका कर चलने से तेरा नाम भी सार्थक हो गया।"

पतग कुछ नही बोला। थोडी देर बाद ही विद्यालय आ गया। मदन ने पोथियाँ उतरवाईं और एड़ू नामधारी पतगसिह से कहा—

"वहाँ जाकर बैठो। जब बुलायें, तब आना।"

पतगसिह एक सकेतिक स्थान पर थोडी दूर जाकर बैठ गया। राजकुमारी का रथ भी तभी आकर रुका। रथ से उतरकर वह मदन से मिली तो मदन ने उसे शुभ सवाद सुनाते हुए कहा—

"राजकन्ये! मेरे पिता ने यह एड़ू नाम का लडका मेरी सेवा के लिए रख लिया है। हम दोनो की ही सेवा किया करेगा।"

"यह तो निरा बुद्धू लगता है।" राजकुमारी ने मदन से कहा—"देखो, कैसा मुंह फाडकर जमुहाई ले रहा है। इसे मुझसे तो दूर ही रखना।"

मदन बोला—

"दूर तो रहेगा ही, क्योकि तुम्हारे पास रहने के लिए तो मैं ही जन्मा हूँ। लेकिन मै तुम्हारा कैसे बन सकूँगा, यही सोचता रहता हूँ।"

"मदन! तुम डरपोक भी तो बहुत हो। तुम अपने पिता से क्यो नही कहते? उनका राजा कितना मान करते

हैं। उसकी बात मानकर मेरे पिता तुम्हारे साथ मेरा विव
अवश्य कर देंगे।"

मदन बोला—

"राजकन्ये ! प्रेमविवाह को तुम हँसी-खेल समझ
हो ? यदि मेरे पिता तुम्हारे पिता से कुछ कहे तो जानती ह
इसका परिणाम क्या होगा ?"

"क्या होगा ? तुम्ही बताओ।" राजकन्या बोली-
"भई, तुम तो आजकल ज्योतिष पढ रहे हो, इसलिए ब
भी सकते हो।"

मदन बोला—

"राजकन्ये ! क्षत्रिय कन्या और ब्राह्मण पुत्र का बेमे
विवाह तो राजा नरसिंह करेंगे नहीं। होगा यह कि तुम्हें
बिठा लेंगे और मेरे पिता को नहीं तो, मुझे देश निका
अवश्य मिल जायेगा।"

"मदन, हमारा विवाह होकर रहेगा।" अपना ह
हवा मे घुमाते हुए राजकुमारी रत्नमंजरी ने कहा—"ज
तुम कैसे पुरुष हो, पर मैं कोई युक्ति निकालकर तु
बताऊँगी।"

"तुम क्या कर सकती हो ?" मदन ने पूछा। राजकुमा
कुछ उत्तर देती कि तभी आचार्य आ गए। अलग-अलग
छात्र एक जगह इकट्ठे हो गए और आचार्यदेव को सामूहि
नमन कर यथास्थान बैठे। आचार्यश्री ने पढाना शुरू किया अ
सबसे कंठस्थ श्लोक सुनने लगे। श्लोक तो सभी को कंठस

थे, पर वे उच्चारण शुद्ध करने के लिहाज से ही बार-बार सुनते थे। जो अशुद्ध बोलता, उसका उच्चारण ठीक करा देते। मदन को स के स्थान पर भी श कहने की आदत थी। उसके इस दोष पर वे सभी को समझाते हुए बोले—

"छात्रो ! उच्चारण शुद्ध हो, इसका सदा ध्यान रखो। स और श के अन्तर को ही ले लो। 'सकल' का अर्थ 'समस्त' होता है और 'शकल' का अर्थ 'टुकड़ा'। इसी तरह 'दास' सेवक होता है और 'दाश' केवट। स और श के उच्चारण-भेद से कैसा अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

"मदन ! तुम सन्धि करके तो ठीक बोलते हो, पर स की जगह श कह जाते हो। इस दोष को मिटाओ। जीभ को सीधा लेटा रहने दो और तब दाँतो के स्पर्श से उच्चारण करो तो दन्ती 'स' ही उच्चारित होगा।"

इसके बाद दिनभर अध्ययन चलता रहा। सन्ध्या को सब अपने-अपने घर गए। अब एडू पतगसिंह नित्य ही मदन के साथ विद्यालय जाता था। राजकुमारी और मदन जब मध्यान्तर मे सरिता तट पर जाते तो भी एडू को सग ले जाते। वहाँ भी वे उन दोनो के बहुत-से काम कर देता। इसी तरह मूर्ख एडू के रूप मे राजकुमार पतगसिंह के दुर्दिन कट रहे थे। □

4

विद्यालय क्या था, एक लम्बा-चौडा उद्यान था। चार
ओर की प्राचीर पत्थरो से बनी थी। वैसे सब खुले मे बैठक
पढते थे। पट्स्तम्भी वट वृक्ष की छाया ग्रीष्म ऋतु मे बह
सुखद थी, और भी छायादार वृक्ष थे। शीत ऋतु मे सब घ
मे बैठकर पढते थे। वर्षा से त्राण पाने के लिए कुछ कुटी
बने हुए थे। वैसे वर्षा ऋतु मे अध्ययन प्राय. बन्द ही रह
था।

आठ दिन बीत गए तो राजकुमारी रत्नमजरी ने ए
युक्ति निकाल ली। मध्यान्तर बेला मे मदन और राजकुमा
अलग एकान्त मे बातें कर रहे थे। एडू भी उनके साथ ग
और कुछ ही दूर जाकर सो गया। उसे यो सोता देख रा
कुमारी बोली—

"तुम्हारा यह एडू क्या पढ पायेगा? जब देखो त
सोता रहता है। ऐसे मूर्ख नौकर से तुम्हे क्या लाभ है?"

मदन बोला—

"रत्न! इससे हमे बहुत लाभ है, क्योकि मूर्ख ह
के कारण यह हमारे भावो को नही समझ पाता। यदि व
चतुर होता तो अब तक भण्डाफोड कर देता।"

"यह तो ठीक है।" रत्नमजरी बोली—"लेकिन

यहाँ क्यो ले आये ? मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ, लेकिन यदि यह सुन ले तो ?"

"कुछ नही होगा। तुम कहो।"

राजकुमारी बोली—

"तो सुनो। आज अँधेरी रात है। आज ही हम दोनो वसन्तपुर छोडकर भाग चले। मैं दो घोडे लेकर गणेश मन्दिर आ जाऊँगी। काफी रत्न भी साथ लाऊँगी। रातभर मे दोनो वसन्तपुर से बहुत दूर निकल जायेगे। फिर ब्याह करके नये सिरे से जीवन बनायेगे।"

मदन झिझका। बोला—

"लेकिन मैं तो घोड़ा दौड़ाना नही जानता। बस धीरे-धीरे ही चला लेता हूँ। कही बीच मे ही तुम्हारे पिता के सैनिको ने पकड लिया तो क्या होगा ?"

"डरो मत! जैसा मैं कहूँ वही करो।" राजकुमारी बोली—"घोडे सधे-सधाये है। वे स्वयं ही दौडेंगे। तुम मेरे पीछे-पीछे चलना। बस वल्गा को साधे रहना।"

मदन ने पूछा—

"लेकिन गणेशमन्दिर तो कई है। कौन-से मे आना होगा ?"

राजकुमारी झुँझलाई—

"इस एडू के साथ रहते-रहते तुम भी बुद्धू बनते जा रहे हो। बस्ती के बीच बने गणेशमन्दिरो से हमे क्या लेना ? नगर के बाहर जो पुराना गणेशमन्दिर है, वही आना। यदि

मैं पहले पहुँच गई तो तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी और तुम पहले जा पहुँचो तो प्रतीक्षा करना। ठीक आधी रात को मैं आऊँगी।"

मूर्ख बने पतंगसिंह ने बड़े ध्यान से यह वार्तालाप सुन लिया। जब मध्यान्तर का समय समाप्त हुआ तो मदन ने उसे बीसियों आवाजे दी, तब वह जागा। वस्तुतः तो वह सोते हुए भी जाग रहा था। दु.खी तो वही रहते है, जो जागते हुए भी सोते है।

संध्या हुई। राजकुमारी अपने रथ मे बैठकर राजभवन गई और मदन अग्निहोत्री एडू के सिर पर पोथियो का बोझ रखकर अपने घर पहुँचा। उसके भाग्य से राजकुमारी थी हं नही, इसलिए आज वह बहुत उदास था। उसे भय था कि हम भागने मे सफल नही हो पायेगे और फिर राजा नरसिंह बड़ा कठोर दण्ड देगा। मुझे तो जीवित नही छोडेगा। मदन ने निश्चय किया कि मैं आधी रात को गणेशमन्दिर नहीं जाऊँगा। क्या करेगी राजकुमारी ? अकेली तो जाने से रही हार-झक मारकर लौट ही आयेगी। सवेरे समझा दूगा बीसियो बहाने हैं। कह दूंगा एडू जाग रहा था।

मदन की उदासीनता देखकर पतगसिंह समझ गया था कि मदन को राजकुमारी का निर्णय पसन्द नही है। यह दुविधा मे है। जानकार तो मुखमुद्रा देखकर सब जान जाते है। लेकिन साहसी पतगसिंह इस अवसर का लाभ उठाना चाहता था। वह राजकुमार था। राजकुमार राजकुमारी के

साथ ब्याह करने का अधिकारी भी है। सकल कला और विद्याओ मे प्रवीण था पतगसिह। कंचनपुर के आचार्य ने उसे मुक्तहस्त से विद्यादान दिया था। मूर्ख का अभिनय करने से ही तो वह मूर्ख नही बन गया था? जब सब सो गए तो पतगसिह दबे पाँव गणेशमन्दिर पहुँच गया और राजकुमारी की प्रतीक्षा करने लगा।

राजकुमारी आठ दिन पहले से ही योजना को सफल करने मे लगी थी। अकेली थी, इसलिए माता-पिता की बहुत लाडली थी। कुछ दिन से उसने अश्वारूढ होकर प्रात भ्रमण शुरु कर दिया था। अपनी एक सखी को ले जाती और दोनो घोडे रात को घुडसाल मे न बंधवाकर अपने भवन के पिछवाडे बधवाती। उसने अश्वपालक (सईस) को आदेश दे रखा था कि हमारे घोडो को यही खुले मे दाना-घास डाल दिया करो। दिन भर भले ही अश्वशाला मे रखो, पर रात को नही। क्योकि सवेरे-सवेरे ये जब अश्वशाला से निकलकर आते है, तो इनसे बडी बुरी गध आती है, जो मुझसे सही नही जाती।

राजकुमारी की यह सनक बहुत सामान्य थी। कोई कारण नही था कि उसकी यह बेतुकी, पर साथ ही छोटी-सी बात न मानी जाती। आठ दिन से दोनो घोडे राजकन्या के भवन के पिछवाडे बँधते। उसकी सखी, जो उसकी दासी ही थी, वासन्ती उसके पास वाले कक्ष मे सोती। वह भी राजकुमारी के साथ जाती। दोनो के साथ आठ अगरक्षक भी अवश्य जाते जो आठों ही अश्वारोही होते।

आज की रात राजकुमारी उठी। रात आधी थी और अंधेरी भी। सब ओर सन्नाटा था। फाटको पर प्रहरी थे। पीछे का भाग सुनसान था। रत्न और आभूषणो की एक पोट उसने साथ ले ली। खिड़की से रेशम की रस्सी के सहारे नीचे उतरी। एक घोडे पर बैठी और एक की वल्गा पकड़ ली, जो उसके पीछे-पीछे चलने लगा। यथासमय वह गणेशमन्दिर पहुँच गई। धीरे-से आवाज दी—

"मदन ! आओ प्यारे।"

पतगसिह आवाज के साथ ही आया और राजकुमारी के हाथ से वल्गा (लगाम) लेकर घोड़े पर सवार हो गया। राजकुमारी ने कहा—

"मेरे पीछे-पीछे ही चलना।"

पतगसिह ने उसके पीछे ही घोडा डाल दिया। थोडी ही देर मे जब नगर निकल गया तो राजकुमारी रत्नमजरी बोली—

"मदन ! अब कोई डर नही है। अब तो घोडा मेरे बराबर ले आओ।"

पतंगसिह कुछ नही बोला। पीछे-पीछे ही चलता रहा। रत्नमंजरी ने समझा कि डर रहा है। इसीलिए नही बोलता। इसका डर निकालूं, यह सोच उसने घोडा दौड़ाया। उसके पीछे पतगसिह ने भी दौड़ाया। राजकुमारी बोली—

"मदन ! तुम तो खूब अच्छा दौडाते हो। वैसे ही डरते थे। ठीक है मेरे बराबर नही चल सकते तो पीछे-पीछे

ही दौडाओ। रातभर मे बहुत दूर निकल जाना है।"

रात अंधेरी थी। तारो का प्रकाश था पर ऐसा नही कि आदमी की पहचान हो सके। राजकुमारी रत्नमंजरी पतगसिह उर्फ एडू को ही मदन अग्निहोत्री समझ रही थी। घोडा दौडाते-दौडाते बेचारी रत्नमजरी थक गई तो रुक कर बोली—

"मदन! तुम्हे हो क्या गया है? बोलते ही नही। ऐसे बिना बोले तो रास्ता कटेगा नही। अब क्यो डर रहे हो? कुछ तो बोलो।"

पर पतगसिह नही बोला। राजकुमारी रत्नमजरी ने घुमाकर अपना घोडा पतगसिह के बराबर कर लिया और अपनी ओर से ही प्रश्न पूछती गई। पतगसिह केवल हूँ, हूँ करता गया। राजकुमारी ने भी उसे ज्यादा नही कुरेदा। दोनो चलते रहे। रात बीतती रही और अब अंधेरा भी मिट चला। थोडी दूर आगे जाकर राजकुमारी ने घोडा रोक दिया और एक पेड के नीचे बैठ गई। यह स्थान नदी का किनारा था। थोडी देर मे पतगसिह भी आ पहुँचा। वह जानबूझकर कुछ पीछे रह जाता था। जब पतगसिह पास आया तो राजकुमारी रत्नमजरी ने उसे देखा और "हाय एडू तू?" कह कर जमी पर गिर पडी। थोडी देर बाद स्वय ही उठी और विलाप करने लगी—

"अरे विधाता! तूने यह क्या मजाक किया? महामूर्ख एडू के साथ भेज दिया मुझे? वैसे तो मूरख है यह, पर

चालाक कितना है कि रास्ते मे बोला नही। अब मैं क्या करू ? कहाँ जाऊँ ? लौटकर वसन्तपुर भी जा नही सकती और इसके साथ भी रह नही सकती।"

बहुत रोई राजकुमारी। फिर घुटनो पर सिर रख कर बैठ गई। पतंगसिह भोला-भाला मासूम बन कर बैठा रहा और राजकुमारी की गतिविधि देखता रहा। वह भी राजकुमारी से नही बोला। राजकुमारी उठी। नित्यकर्म से निवृत हो सरिता मे स्नान किया। कुछ धर्मक्रियाएँ की और कलेवा लेकर खाने बैठ गई। पतगसिह से पूछा भी नही, बल्कि उस की ओर पीठ करके बैठी। पतगसिह भी स्नानादि से निवृत्त होकर बैठा था। कुछ खाना राजकुमारी ने बचाकर छोड़ दिया। वही अपने आप पतगसिह ने खा लिया।

अब क्या करना है, राजकुमारी रत्नमजरी इस विषय पर सोचने लगी। उसने सोचा, 'मै नारी हूँ। एकाकिनी तो रह ही नही सकती। जैसे लता को वृक्ष का सहारा चाहिए, वैसे ही नारी को पुरुष का। लेकिन इसके साथ तो मै स्वप्न मे भी नही रह सकती। इसे तो मै अपना नौकर भी नही रख सकती। अब तो मेरी गणना न मरो मे है, न जीवितो मे। बस अब तो आत्महत्या ही मुझे शान्ति देगी।'

यह सोच राजकुमारी उठी। रत्नो की पोट उसने पीठ से बाँधी और नदी की ओर चल दी। परम चतुर पतगसिंह उसका मनोभाव ताड़ गया और उसके पीछे-पीछे चला। कुछ के दिये हुए रत्न उसके पास भी थे। उसने भी उन्हे सम्हा

कर रख लिया। उसने मन मे सोचा—'कचनपुर से चलते समय आचार्य ने मुझसे कहा था कि अभी तुझे मरना नही है। तो मैं भी नदी मे कूद पडूं। समय से पहले मै भी नही मरूंगा।' इधर राजकुमारी नदी मे कूदी तो उसके पीछे-पतगसिह भी कूद पडा। हुआ वही, जो होना था। दोनो किनारे लग गए। बच गए दोनो। दोनो ने अलग-अलग कपडे सुखाये। बोला कोई किसी से नही। रत्नमजरी मान कषाय से दूषित थी इसलिए पतगसिह से बोलना नही चाहती थी और पतगसिह उसके मिथ्या अहकार को मिटाना चाहता था, इसलिए नही बोलता था। अब राजकुमारी ने सोचा कि इससे पिण्ड तो छूटेगा नही। इसके साथ चलकर कही नगर मे व्यवस्था कर लूंगी। मेरे पास पर्याप्त रत्न है। व्यवस्था तो हो ही जाएगी। इसे तो सग रखना ही पडेगा। न रखूं तो जाऊँ कहाँ ? पर इससे बोलूंगी कभी नही।

रत्नमजरी के समर्पण की यह पहली सीढी थी। किसी बीज को अलग अकुरित करे और उसके अकुर को नीचे कर दे तथा मूल भाग को ऊपर तो मूल घूम कर नीचे आयेगा। अधोगति मूल अथवा जड का स्वभाव है। नारी कितनी ही ऊँची हो, पर समर्पण और पुरुष का आश्रय लेना उसका स्वभाव है। अहकार और घृणा के कारण रत्नमजरी पतगसिह से दूर रहना चाहती थी। पर अब उसे झुकना पडा। साथ रखने का निश्चय कर लिया, साथ ही न बोलने का भी निश्चय किया।

पतंगसिंह तो मूर्ख बना ही था। घोड़े दोनो के ही छूट चुके थे। भीगे कपड़े जब सूख गए तो दोनो ने पहन लिये। कन्धे पर कम्बल डाले पतंगसिंह चल दिया। उसके संग ही रत्नमंजरी भी चलने लगी। वसन्तपुर के विप्र मार्तण्ड अग्नि- होत्री ने ओढने के लिए एक कम्बल पतगसिंह को दे दिया था। उस कम्बल को भी पतंगसिंह साथ लाया था। वही कम्बल उसके कन्धे पर पड़ा था।

दोनो बडे विचित्र सहयात्री थे। साथ-साथ चलते, पर बोलते नही थे। राजकुमारी रत्नमजरी थककर बैठ जाती तो पतगसिंह भी बैठ जाता और जब पतगसिंह बैठ जाता तो रत्नमंजरी उसके उठने की प्रतीक्षा करती। रत्नमजरी न तो उसे छोड़ सकती थी और न ही उसके साथ रहना चाहती थी। एक इच्छा की पूर्ति वह उसके साथ रहकर कर रही थी और दूसरी की पूर्ति उससे न बोलने का निश्चय करके कर ली थी।

इसी तरह सध्या तक दोनो चले। मार्ग मे कुछ वनफल खा लिए थे। जब कुछ झुटपुटा हो गया तो दोनो एक वृक्ष के नीचे सो गए। रत्नमंजरी को सो पडते ही नीद आ गई। कोमल शय्या पर सोने वाली रत्नमजरी आज कठोर धरती पर सो रही थी और धरती पर ही उसे ऐसी नीद आई कि देह की सुधि बिसार कर सो गई। चलने की थकान ने उसे बेहोश सा कर दिया था। लेकिन पतंगसिंह जाग रहा था। उसने यह धारणा बना ली थी कि सोने वाला हमेशा खो

है। जहाँ तक बने, जागना ही चाहिए। अत वह तने से पीठ टिकाये बैठा था और चांदनी मे रत्नमजरी के सुप्त सौन्दर्य को देख रहा था। तभी टी-टी टें-टें की आवाज वृक्ष के ऊपर से आई। शुक युगल बोल रहे थे। 'पशु-पक्षी वाणी रहस्य' शास्त्र पढा था पतगसिह ने, सो पशु-पक्षियो की भाषा वह खूब समझ लेता था। मनुष्य ने अपनी बुद्धि से सब कुछ जान लिया है। वह हर पशु और हर पक्षी की बोली भी बोल लेता है और समझ भी लेता है। पतगसिह भी सैकडो पशु-पक्षियो की बोलियाँ हूबहू बोल लेता था। बडे ध्यान से वह शुक-युगल की बातें सुनने लगा।

शुकी ने शुक से कहा—

"नाथ! हमारे वृक्ष के नीचे दो अतिथि ठहरे हुए है। इनके लिए हमे कुछ तो करना ही चाहिए।"

"क्या करे प्रिये?" शुक ने कहा—"हम तो पक्षी है। वैसे यदि यह पुरुष सुन रहा हो तो मैं एक ऐसी चीज का पता बता सकता हूँ कि यदि यह उसे पा ले तो क्या से क्या हो जाए।"

"ऐसी क्या चीज है? आप सुना डालिए। जानने की उत्सुकता तो मुझे भी है।" शुकी बोली—"यदि अतिथि के बडे भाग्य हुए तो वह भी सुन लेगा।"

शुक बोला—

"प्रिये! यहाँ से उत्तर की ओर चलने पर केवल सात कोस की दूरी पर एक वृक्ष है। वह शिरालजून का वृक्ष है।

सैकडो-हजारो वर्ष पुराने इस वृक्ष का रहस्य कुछ पक्षी ही जानते है। वृक्ष भी वडे रहस्यमय होते है। किसी देव माया के कारण या किसी ऋषि-मुनि के शापवश उनमे वडे-वडे चमत्कारी गुण आ जाते है।"

शुकी वोली—

"नाथ! आप तो विपयान्तर करने लगे। पहले उस शिरालजून की विशेपता वता डालिए।"

"वताता हूँ।" शुक ने कहा—"तुम ध्यान से सुनो। इस वृक्ष की छाल की टोपी वना कर यदि कोई पहने तो पहनने वाला अदृश्य हो जाता है। वह सवको देखता है और उसे कोई नही देखता।"

"वस यही एक वात है?" शुकी ने कुछ उपेक्षा-सी दिखाई।

शुक वोला—

"आखिर तो तुम भी नारी हो। वीच मे से वात काटना नारी का स्वभाव है। पहले पूरी वात सुनलो। उस वृक्ष के पत्तो मे यह गुण है कि कैसा ही गहरा घाव हो, पत्तो के रस तथा उसके लेप से तुरन्त भर जाता है। घाव का निशान भी नही रहता। तीसरी वात यह कि उस वृक्ष के कोमल तन्तु रेशो को यदि कोई अपने कम्वल, खाट आदि मे लगा ले तो उस पर वैठकर वह आकाश मार्ग मे इच्छित स्थान तक जा सकता है।

"प्रिये! लेकिन ये तीनो वस्तुएँ प्राप्त करना भी असम्भव

जैसा मुश्किल है। यह युवक सुनकर भी नही ला सकेगा।"

"यह तो आपने और भी बुरा किया।" शुकी बोली—"फिर सुनाने ही क्यो बैठे ? यह बताओ कि कठिनाई क्या है और उस कठिनाई को कैसे दूर किया जा सकता है ?"

शुक ने बताया—

"तो सुनो। उस वृक्ष के कोटर मे दृष्टिविष सर्प रहता है। जो भी उस पेड पर चढता है या छाल उतारता है, उसे सर्प देखता है और उसके देखते ही प्रयत्नकर्ता भस्म हो जाता है।

"प्रिये ! अब मैं उपाय भी बताता हूँ। वृक्ष से बीस डग दूर दक्षिण की ओर एक कुण्ड है। उस कुण्ड मे नहाने से मनुष्य कौआ बन जाता है। कौआ बनकर मनुष्य वृक्ष की डाली पर जा बैठे। उस वृक्ष पर दो तरह के फल भी लगते है। हरे और लाल। हरे कच्चे है और लाल पके हुए। दोनो मे से किसी एक फल को खाने से कौआ पुन. मनुष्य बन जाता है। अन्तर इतना है कि हरे फल से विकृत आकृति का मनुष्य बनता है और लाल से अपने असली रूप वाला।"

शुकी ने एक निश्वास छोडकर कहा—

"आपने तो बडी रहस्यपूर्ण बाते बताई। यदि यह अतिथि भाग्यशाली होगा तो चारो चीजो को प्राप्त कर लेगा।"

पतंगसिह ने सब कुछ सुन-समझ लिया था। एक दृष्टि रत्नमजरी के सुप्त सौन्दर्य पर डाली और उठ बैठा। आकाश

की ओर देखा। चन्दा ज्यादा नही चढा था। अभी तो रा
वहुत वाकी थी। सात कोस ही तो चलना था। उधर से तो
आकाशमार्ग से आयेगा। यह सोच पतंगसिह ने अपना कम्ब
कधे पर डाला और शुक निर्दिष्ट दिशा की ओर चल दिया

दूर से ही उसने शिरालजून का वृक्ष देख लिया था
तिरछा होकर जलकुण्ड के पास गया। कम्वल किनारे र
और डुवकी लगाई तो वडे आकार का कौआ वन गया। प
फडफडाकर पानी झाड़ा। कुछ देर वैठकर पानी सुखा लिया
पजो मे कम्वल दवाकर उडा और उक्त अद्भुत वृक्ष पर
वैठा। लाल फल तोड़कर खाया तो अपने पूर्ण रूप मे
गया। कौए के पंख, अव पहने हुए कपडो मे परिवर्तित
गए। कमर से खड्ग निकालकर पतंगसिह ने पहले वृक्ष
छाल उतारी। लम्वी-लम्वी छाल को सिर पर लपेटा
पगडी के लपेटने के आकार की टोपी वन गई। घुमावों
गाँठ वाँधकर स्थिर कर दिया। फिर कुछ पत्ते तोड़े। प
भी तोड लिये। वृक्ष की डाले तोडकर कुछ रेशे निकाले
उन्हे अपने कम्वल मे नीध लिया। फिर कम्वल पर वैठ
कहा —मुझे वही ले चलो, जहाँ राजकन्या रत्नमजरी
रही है। ऐसा कहते ही कम्वल पतंगसिह को उडाकर य
स्थान ले गया।

रत्नमंजरी अभी सो रही थी। चन्दा पश्चिम मे छि
गया था। थोडी-सी रात अभी वाकी थी। पतगसिह पे
चला और शुक-शुकी को प्रणाम कर कहा—

"पक्षिश्रेष्ठ ! आपके अनुग्रह से मैंने चारो चीजें प्राप्त कर ली हैं। आपका बहुत आभारी हूँ।"

शुक ने कहा—

"राजपुत्र ! तुम बहुत पुण्यात्मा हो। मैं भी जानता था कि तुम मेरी बातें सुन रहे हो और यह भी जानता था कि सफलता प्राप्त करोगे। अब तुम दक्षिण दिशा की ओर जाओ उस वन मे भी तुम्हे कुछ अलभ्य प्राप्त होगा। क्या होगा, यह तो मैं नही जानता, पर शकुन विचार से कह रहा हूँ कि कुछ अलभ्य ही पाओगे। आज से तीसरे दिन तुम दक्षिण दिशा के वन मे पहुँच जाओगे।"

शुक युगल को पुनः प्रणाम कर पतगसिह नीचे आया। राजकुमारी अब भी सो रही थी। पतगसिह उससे कुछ दूर हटकर बैठा। अपना खड्ग निकालकर अपनी जघा चीर डाली। गुरु द्वारा दिये हुए रत्न जघा मे छिपाये और फिर शिरालजून के पत्तो का रस निचोड दिया तो देखते-देखते घाव भर गया। पक्षी चहचहाने लगे थे। सवेरा हो चला था। पतगसिह शौचादि से निवृत्त भी हो आया। अब रत्नमंजरी उठी। उसे शौच की शका हुई तो पतगसिह से कुछ नही पूछा। अपने से ही बोली—

"यह कैसा विचित्र वन है कि यहाँ कही जलाशय भी नही है। चलूं देखूं, कही तो मिलेगा।"

राजकुमारी का आशय समझकर पतगसिह जलाशय की ओर चल दिया। पीछे-पीछे रत्नमजरी चली। जब जलाशय दीखने लगा तो पतग एक पेड के नीचे बैठ गया। रत्नमंजरी शौचादि से निवृत्त होकर आई और एक ओर चलने लगी। पतग भी चला। सयोग से दोनो अनबोले सहयात्री दक्षिण दिशा की ओर ही बढ रहे थे। □

5

दोनो दिन भी रात को वन मे ही रुका पतगसिह । तीसरे दिन भी वह एक वन मे पहुँचा । जिस वृक्ष के नीचे पतगसिह और रत्नमजरी रात काट रहे थे, उस वृक्ष पर चटक चटिका नाम के दो पक्षी आपस मे बात कर रहे थे । चटक ने चटिका से कहा—

"प्रिये ! यहाँ से कुछ कोस दूर पोतनपुर नामक नगर है । नगर के बाहर एक बहुत पुराना किन्तु लम्बा-चौडा उद्यान है । उस उद्यान मे बहुत कम लोग जाते है । क्योकि उसके पुरानेपन ने उसका सौन्दर्य ही नष्ट कर डाला है । इमली के पुराने पेडो पर गिद्ध रहने लगे है । ऐसे उद्यान मे जायगा भी कौन ? उसी उद्यान के दक्षिण कोण मे एक पुराना इमली का पेड़ है । उसके नीचे इतनी मुहरे गडी है कि इक्कीस शकट भरे जा सकते है ।"

चटिका बोली—

"जिसके भाग्य मे होगा, वही लेगा उन मुहरों को । भाग्यशाली के साथ तो सम्पत्ति छाया की तरह लग रहती है ।"

पतगसिह ने चटक-चटिका का पूरा वार्त्तालाप सुन लिया । प्रात. उठकर वहाँ से चला तो पोतनपुर मे पहुँच गया और पुराने सूने उद्यान मे ही ठहरा । रत्नमजरी को इस

इस उद्यान मे ठहरने की नही थी, पर विरोध भी नही कर सकती थी। अभी सध्या नही हुई थी। सध्या होने मे एकाध प्रहर की देर थी।

रत्नमजरी को एक वृक्ष के नीचे बैठा छोड पतगसिह बाग के दक्षिण कोने की ओर गया। चटक द्वारा बताई गई पुरानी इमली खडी मिली। उसने चारो ओर देख खड्ग से इमली के नीचे की भूमि खोदी। कुछ गहराई तक खोदा तो मुहरे चमकने लगी। थोडी-सी मुहरे पतगसिह ने निकाल ली और फिर मिट्टी डालकर शेष को ढक दिया। सीधा नगर को गया। रत्नमंजरी बैठी-बैठी सोचती रही—'कैसा मूर्ख है एडू। बडी देर तक तो बैठा रहा और अब नगर मे गया है। पास मे कौडी भी नही है, भोजन क्या मांगकर लायेगा ? मांगे का भोजन यही खा लेगा। मैं तो खाने से रही।'

इधर पतगसिह बाजार मे पहुँचा। सिले हुए कपडे लिये। सोने के तारो की पगडी ली। जडाऊ अगरखा लिया। कुण्डल भी ले लिये। पीले रग का उत्तरीय लिया। उत्तरीय रेशम का था। सफेद धोती पहन ली और चमकते जूते भी पहने। इस सब मे दस मुहरे खर्च हो गई। अब वह बाजार घूमने लगा। एक बडी-सी दुकान पर मसनद के सहारे बैठे एक सेठ को देखा। सेठ की वेश-भूषा से पता चलता था कि वह पोतनपुर का बडा सेठ था। लेकिन वह मात्र बड़ा ही नही, नगरसेठ था।

नगरसेठ धनदत्त की पोतनपुर मे बासठ दुकानें थी।

बाजार का बड़ा भाग उसी का था। पोतनपुर के राजा वज्र-नाभ भी नगरसेठ धनदत्त को बहुत मान देते थे। नगरसेठ की वेशभूषा और दुकान की भव्यता से आकर्षित होकर पतंग-सिंह उनके पास पहुँचा और नगरसेठ भी पतंगसिंह के व्यक्तित्व तथा वेशभूषा से प्रभावित हुए। इस समय धनदत्त अपनी रत्नों की दूकान पर बैठे थे। बातचीत शुरू हुई। सेठ ने पूछा—

"कहो सेठ! क्या दिखाऊँ? हीरा या नीलम?"

पतंगसिंह बोला—

"मेरी जरूरत की कोई चीज होगी तो अवश्य खरीद लूंगा।"

धनदत्त तो कुछ बोल नहीं पाये। उनके मुनीम ने बड़े गर्व से कहा—

"पोतनपुर मे ऐसी क्या चीज है, जो हमारे सेठ के पास नहीं मिल सकती? खरीदने वाले का हौसला चाहिए।"

पतंग ने उसे और ऊँचा चढ़ाते हुए कहा—

"पहले तो सभी दुकानदार दूर से ही ग्राहक को बुलाते है—कहते है आओ भाई, क्या चाहिए। अरे सुनो तो! आओ आओ। और जब ग्राहक आता है तो फिर बड़े मायूस बनकर कहते है—यह तो आपको अन्यत्र मिलेगी।"

अब सेठ बोले—

"परदेसी लगते हो, इसलिए मुझे नहीं जानते। हर वस्तु की दुकानें है मेरे पास। यदि तुम मे खरीदने का हौसला

है तो मेरा वेचने का हौसला भी देखो। मैं कहता हूँ बोलो क्या चाहिए तुम्हे ?"

पतग वोला—

"मुझे एक भवन चाहिए।"

"भवन ?" धनदत्त ने भौहो को सिकोडते हुए पूछा—

पतगसिह मुस्कराया। वोला—

"क्यो, भवन विकने की चीज नही। अब कहाँ गया वचन ?"

धनदत्त ने कहा—

"हाँ, भवन भी मैं दूंगा। नया भवन बनवाया है मैंने। अठारह कक्ष तो वडे-वडे है ही और पहले ही खण्ड मे है। तीनो खण्डो के कक्ष तीस हैं। भीतर ही जलकुण्ड तथा भवन-वाटिका है। एक ओर आठ दुकाने है, जो वस्त्र पण्य मे लगती है। तुम मूल्य दे सकोगे ?"

"आप माँगकर तो देखे।"

धनदत्त जानता था कि यह वेचारा क्या खरीद पायेगा। ी वोला—

"भवन और दुकानो का मूल्य तो वहुत है, पर मैं तुमसे त्र आठ लाख ही लूंगा।"

पतगसिह ने तुरन्त मुट्ठी भर मुहरे पटक दी और ौर वोला—

"यह वचनवद्धता की निशानी—साही रही। कल सवेरे ा मूल्य मिल जायेगा।"

धनदत्त उसके मुँह की ओर देखता रह गया। चार-छः आदमी और भी दूकान पर बैठे थे, वे भी इस क्रय-विक्रय को देखते रह गये। पतगसिह तुरन्त मुड़ा और बाजार से कुछ मिठाई खरीदी। सीधा उद्यान पहुँचा। रत्नमजरी ने उसकी बदली हुई भव्य और आकर्षक वेशभूषा देखी तो चक्कर खा गई। उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। मन-ही-मन बोली—"वाह रे एडू! तेरे ऐसे ठाट। अब भी एडी उचका-कर चलता है। पर कपड़े खूब पहने। मालूम पड़ता है, मेरे रत्नो मे से कुछ चुरा लिये होगे। मूर्ख है न, सो लाख का रत्न हजार मे ही बेचा होगा। कही ठिकाने से बैठकर अपने रत्नो की सम्हाल करूँगी। अब रहना तो तेरे साथ ही है, पर तुझसे बोलूँगी कभी नही।"

रत्नमजरी क्या सोच रही है, इससे पतगसिह को कोई मतलब नही था। वह तो खाने बैठ गया। आधी मिठाई अलग रख दी। उसे रत्नमजरी ने खाया। एक ओर हटकर पतग-सिह ने अपना उड़न कम्बल बिछाया और उसी पर सो गया। रत्नमजरी दूसरी ओर सो गई।

बहुत तडके उठा पतगसिह। सीधा मण्डी गया। व्यापा-रियो का माल ढोने के लिए वहाँ बहुत-से शकट खडे रहते थे। पल्लेदार मजूर भी रहते थे। पतगसिह ने एक-एक मुहर अग्रिम देकर इक्कीस गाडियाँ किराये पर कर ली। खुदाई के लिए कुछ मजूर भी ले लिये। एक तो कई गुनी मजूरी और किराया और दूसरे अग्रिम—इन दोनो बातो से प्रभावित गाडी-

वान और मजूर पतंगसिंह के पीछे-पीछे चल दिये। मजूरो ने खुदाई शुरु कर दी। पीली-पीली चमकती हुई मुहरें खनाखन निकलने लगी। सबके मन का सन्देह और आश्चर्य दूर करने के विचार से पतगसिह ने मनगढन्त कहानी सुनानी शुरु कर दी—

"महीनो पहले की वात है। व्यापार द्वारा मैंने इक्कीस शकट मुहरो का उपार्जन किया। इसी मार्ग से जा रहा था। मुझे सूचना मिली कि आगे दस्युओ ने एक सार्थ को लूट लिया है। अत. लुटने के डर से मैंने अपनी मुहरे यही छिपा दी। आज आया हूँ। अब तो इसी पोतनपुर मे व्यापार करूँगा। आप सबका सहयोग तो मिलता ही रहेगा।"

यह कहानी पतगसिह ने बडे स्वाभाविक ढग से कही। सबको विश्वास हो गया। एक बूढे गाड़ीवान ने टिप्पणी की—

"धर्म की कमाई का माल कही नही जाता। आपकी कमाई धर्म की थी, तभी तो यथास्थान गडा-गडाया धन मिल गया। नही तो किसी को पता न चल जाता?"

एक दूसरा बोला—

"नाप-तौल का धन है, तभी तो इक्कीस शकट किराये लिये हैं। यदि इनका न होता तो इन्हे क्या पता कि इक्कीस गाडियाँ ही मुहरे निकलेगी।"

तीसरे ने वात समाप्त की—

"अरे! जब गिनकर गाड़ियाँ खाली की है तो **गिनकर**

ही भरेंगे। अब बातो मे ही लगे रहोगे या भरोगे भी।"

गाड़ियाँ भर गईं। यह सब भाग्य की ही तो बात थी कि किसी को सन्देह नही हुआ। यदि तनिक भी सन्देह होता तो सब मुहरे पोतनपुर के नरेश वज्रनाभ के कोप मे जाती। इक्कीसो गाड़ियाँ तैयार हो गईं तो पतंगसिंह उन्हे नगर की ओर ले चला। धनदत्त के नये भवन के सामने गाडियाँ रुकीं। पतगसिंह ने धनदत्त सेठ को बुलवाया। आ गया धनदत्त। पतंगसिंह बोला—

"भवन खाली कराओ और अपना मूल्य ले लो।"

धनदत्त को ऐसी आशा नही थी। प्रार्थना के स्वर मे बोला—

"तो खरीद ही लोगे? मेरा तो सब चौपट हो जायगा।"

पतगसिंह बोला—

"सेठजी! वचन के पीछे तो लोग मिट जाते हैं। अ कि तुम्हारी बासठ दुकानें तो रह ही जायेंगी। इन आ दुकानो मे जितना माल हो, उनका लेखा कर लो। मैं चलाऊँगा इन दुकानो को।"

अब बात बढाना उचित न समझ, धनदत्त सेठ ने अप मुनीम, दलाल और नगर के प्रतिष्ठित जन बुलाए। तीन ख हवेली और उसके साथ लगी आठ दुकानें आठ लाख की थीं दुकानो के भीतर का सामान छह लाख का आका गया पतगसिंह ने चौदह लाख मूल्य की मुहरे तोल कर दे दी।

एक कोठे मे भरवा दी। रत्नमंजरी इस कौतुक को इन्द्रजाल की तरह देख रही थी।

दो दिन मे पतगसिंह का ठाट जम गया। दुकानें चलने लगी। मुनीम, दास-दासी नियुक्त हो गए। भोजन बनाने के लिए भी एक ब्राह्मणी नियुक्त कर ली। भवन के सामने अपना नामपट्ट लगाया—सेठ पूनमचन्द। पतगसिंह अब सेठ पूनमचन्द के रूप मे प्रसिद्ध हो गया। श्रेष्ठ समाज उसे सम्मान देने लगा। नगरसेठ धनदत्त तो उसे वहुत ही मानता था।

इतने पर भी रत्नमजरी की आँखे नही खुली। उसकी आँखो पर अहकार का परदा पडा था। अव भी वह पतंगसिंह से नही वोलती थी। भोजन वनाने वाली वूढी ब्राह्मणी से वाते कर लेती। दास-दासियो को भी आदेश दे देती। समय पर भोजन भी कर लेती। पर पतगसिंह को अव भी एडू ही समझती। उससे कभी वोलने का प्रयास भी नही करती। इसीलिए तो नारी के लिए कह देते हैं कि 'नारि सहज जड अज्ञ।'

पतगसिंह भी रत्नमजरी से अलग एकान्त कक्ष मे रहता था। उसका कोई काम भी रत्नमजरी से नही पडता था। वह अलग रहकर ही अपनी योजनाएँ वनाता। उसकी खिचडी अलग पकती थी। कुछ सेवक उसके अन्तरग और रहस्य के साथी थे। रत्नमजरी के पास रहकर भी वह दूर था। दूर रहकर ही वह मानिनी का मान भग करना चाहता था।

पतंगसिंह उर्फ सेठ पूनमचन्द अब पोतनपुर नरेश वज्र-नाभ से परिचय करना चाहता था और उसके लिए सोचता था कि किसी चमत्कारिक ढंग से परिचय करूं, वैसे क्या करूंगा ? मेरे जैसे सेठ तो पोतनपुर मे सैकड़ों हैं।

दिन बीत रहे थे और सेठ पूनमचन्द रूपी पतंगसिं राजा से मिलने के लिए चमत्कारिक ढग के ताने-बाने बुन करता था। फिलहाल उसके पास यही एक काम था। क्र विक्रय का काम तो मुनीम आदि सुचारू रूप से कर ही रं थे। □

6

पतगसिह को एक युक्ति सूझ गई। आधी रात को उठा और शिरालजून वृक्ष की छाल से बनी टोपी पहनकर अदृश्य रूप हो गया। फिर उडन कम्बल पर बैठकर आदेश दिया—"मुझे पोतनपुर नरेश वज्रनाभ के शयनकक्ष मे पहुंचा दो।"

पतगसिह राजा के शयनकक्ष मे पहुँच गया। राजा-रानी की शय्याएँ पास-पास पडी थी। दोनो सुख-निद्रा मे सोये थे। दीपाधार पर रखा दीप मन्द प्रकाश बिखेर रहा था। बाहर प्रहरी पहरा दे रहे थे। पतगसिह सब-कुछ देख रहा था पर उसे कोई नही देख रहा था। राजा के सिरहाने मुकुट उतरा रखा था और एक ओर खड्ग भी रखा था। पतगसिह ने दोनो को चुपके-से उठाया। फिर अचक से हस्त लाघव कौशल से कंठ का हार भी उतार लिया। तीनो चीजें लेकर उड़न कम्बल पर बैठ निज भवन मे आया। तीनो चीजें अपने भवन के तीसरे खण्ड पर इस ढग से टाँगी कि भवन वीथी मे से गुजरते लोगो को दिखाई दे।

सवेरे राजभवन मे खलबली मच गई। राजा अपने पहरेदारो पर झल्लाया। सबने शपथ खाकर विश्वास दिलाया कि हम रातभर जागते ही रहे है। हमारी जानकारी मे पत्ता भी नही खड़का था। राजा वज्रनाभ ने तुरन्त मन्त्री को बुलाकर कहा—

"मन्त्रिवर ! कोई देव या विद्याधर ही ऐसा चमत्कार कर सकता है। किसी ने मुझे चुनौति दी है। जैसे भी बने इस चोर का पता लगाना चाहिए।"

मन्त्री ने विश्वास दिलाया कि मै कोई कसर नहीं छोड़ूँगा। यह आश्वासन दे मन्त्री ने अपने चर और गुप्तचर राजा की चीजो का पता लगाने के लिए नगर मे चारो ओर फैला दिये। बड़ी आसानी से पता चल गया। कई चरो ने एक माथ मन्त्री से जाकर कहा—

"महामन्त्री ! श्रेष्ठिनिवास मे पूनमचन्द नाम के कोई धनी सेठ रहते है। पता लगा है कि वे परदेशी है और नगर-सेठ धनदत्त की हवेली खरीदकर रह रहे है। उन्ही पूनमचन्द सेठ के भवन पर हमने राजा की तीनो चीजे टगी देखी हैं।"

चरो की बात सुनकर मन्त्री ने सशस्त्र सैनिक लिये और पतगसिह की हवेली को चारों ओर से घेर लिया। फिर पतग-सिह के प्रहरी से कहा—

"अपने सेठ से कहो कि वह अपने को हमारे हवाले कर दे। वह चोर है और उसने हमारे राजा का हार, मुकुट तथा खड्ग चुराये हैं।"

प्रहरी ने कहा—

"मन्त्रीजी ! आपको विपरीत निश्चय हुआ है। हमारे सेठ तो महादानी, परम धार्मिक और पुण्यात्मा हैं। नगर भर उनको जानता है। चोर तो वे स्वप्न मे भी नही हो सकते।"

मन्त्री ने कहा—

"जब चोर पकडा जाता है, तब भी वह स्वीकार नही करता कि मैं चोर हूँ। अत चोर या उसके चरो के इन्कार करने पर कोई नही मान सकता। हमे राजा की तीनो चीजें तुम्हारे सेठ की हवेली पर टगी दिखाई दे रही है।"

प्रहरी ने कहा—

"तो फिर आप उनसे मिल लीजिए। मैं आपको लिये चलता हूँ।"

प्रहरी मन्त्री को लेकर ऊपर पहुँचा और पतगसिह को सूचित किया कि पोतनपुर के महामन्त्री अमितवाहन आपसे मिलना चाहते है।

"उन्हे आदर सहित ले आओ।" पतंगसिह ने अपने प्रहरी को आदेश दिया। मन्त्री कक्ष मे प्रविष्ट हुआ। सिहासन-नुमा आसन पर पतगसिह पूनमचन्द सेठ के रूप मे बैठा था। उसने आदर से अपने सामने पडे आसन पर मन्त्री को बैठाया। आसन पर बैठा मन्त्री कभी कक्ष की सजावट को देखता, कभी सेठ को। मन्त्री मुडकर कक्ष की सजावट को देख रहा था कि पतंगसिह ने पेड की छाल वाली टोपी पहन ली और अदृश्य हो गया। अदृश्य रूप मे ही उसने मन्त्री का ध्यान अपनी ओर खीचते हुए कहा—

"मन्त्रिवर! आपकी क्या सेवा करूँ? आपने कैसे कष्ट किया?"

अदृश्य स्वर सुनकर मन्त्री चकराया। डर के मारे उसके पसीना छूट गया। साहस करके उसने पूछा—

"महानुभाव ! आप कौन है ? देव हैं या विद्याधर ! बस कृपा कर यह बताइये कि राजा की चीजे आप क्यो ले आये ?"

अदृश्य बने हुए पतंगसिंह ने कहा—

"मन्त्रीजी ! मै न देव हूँ और न विद्याधर। बल्कि विद्याधर मेरी आज्ञा का पालन करते है। मेरे वश मे वेताल है। उसी नटखट ने राजा की चीजे उड़ाई होंगी। आप राजा को ही भेज दे, वह अपनी चीजे ले जायगा।

"मन्त्रीजी ! एक बात मेरी और सुन लीजिये। मेरा वेताल कह रहा है कि आपके सैनिको ने मेरे भवन को घेर लिया है। मैंने उसे आज्ञा नही दी है, इसलिए वह शान्त है। आप उसकी शक्ति का अनुमान नही लगा सकते। वह चाहे तो आपकी समस्त सेना का सफाया कर सकता है। भविष्य मे ऐसी भूल मत करना।"

भयातुर मन्त्री ने प्रार्थना की—

"सेठजी ! मेरा अपराध क्षमा करे। मैं आपको जानता न था। कृपा कर अब मुझे दर्शन दीजिए।"

पतंगसिह ने कहा—

"पहले अपने सैनिको को यहाँ से भगाइए और उस समय तक मैं अदृश्य होकर वेताल को रोक रहा हूँ। जब तक आपके सैनिक नही जायेगे, मै आपको दर्शन नही दे सकता। कहीं ऐसा न हो कि विवश होकर मै वेताल को आदेश दे बैठूं।"

यह सुनकर मन्त्री बहुत घबरा गया और तुरन्त उठ

बाहर गया। सैनिकों को आदेश दिया—

"आप सब लौट जाओ। मेरा रथ यही रहे। मैं बाद मे आऊँगा।"

इतनी देर मे पतगसिंह ने अपनी छाल वाली टोपी उतार ली। जब मंत्री पुन कक्ष मे प्रविष्ट हुआ तो पतंगसिंह को बैठे देखा। हँसते-मुस्कराते पतगसिंह ने मत्री से कहा—

"बडी मुश्किल से वेताल को भगाया। अब आप निश्चिन्त बैठें।"

मन्त्री कुछ नही बोला। पतगसिंह ने फिर जलपान मगाया। दोनो ने साथ बैठकर जलपान किया। पतगसिंह रथ तक मन्त्री को छोडने आया और अभिवादन करके विदा किया। मन्त्री पूनमचन्द सेठ बने पतंगसिंह की शक्ति और विनम्रता—दोनो से दब गया। राजभवन पहुँचकर राजा वज्रनाभ को सब बातें बताईं और कहा—

"राजन्! अब आप मेरे साथ चलकर अपनी तीनो चीजें ले आइये। पूनमचन्द सेठ तो हमारे नगर का गौरव और राजसभा की शोभा है। उससे मित्रता करने मे ही सब विधि भलाई है। यदि उसकी नीयत मे खोट होती तो आपकी चीजो को यों सरे आम न टाँग देता।"

राजा ने मन्त्री की बात मानी। उसके साथ पतगसिंह के पास गया। पतगसिंह ने दोनो का सम्मान किया और राजा की तीनो चीजें—हार, मुकुट, खड्ग सौंप दिये। फिर राजा ने प्रार्थना की—

"सेठजी ! आप हमारी सभा मे आया करे। आपका आसन मेरे आसन के समान भूमि मच पर ही रहेगा। सच-मुच जैसा मन्त्री से सुना, वैसा ही पाया।"

पतंगसिंह ने राजा की प्रार्थना स्वीकार की। दूसरे दिन से ही वह नित्य राजसभा मे बैठने लगा। इस घटना मे पूनमचन्द रूपी पतगसिंह जन-जन का जाना-पहचाना हो गया। भाग्य सयोग से एक ही परिस्थिति कभी अनुकूल और कभी प्रतिकूल वन जाती है। यही कारण था कि पतगसिंह चमत्कारी ढंग से राजा से परिचय करने और सम्बन्ध जोडने मे सफल हो गया। वरना, उसके पास कौन-सा वेताल था, जो वज्रनाभ की सेना का सफाया करता ? भाग्य अनुकूल होता है तो लोग रस्सी का साँप दिखाकर डरा देते है।

× × ×

इधर राजकुमारी रत्नमंजरी मन-ही-मन पतगसिंह को समर्पण कर बैठी। वादल सूर्य को कितना ही ढक ले, पर पूर्णिमा के वाद चन्द्र की चाँदनी भी वादलो से ढके सूर्य की एक झाई का मुकाबला नही कर सकती। पतगसिंह का मूर्खता का अभिनय रत्नमजरी को अब धोखे मे न रख सका। रत्नमंजरी सोचने लगी—'यह तो कोई चमत्कारी पुरुष है, इसके रूप-सौन्दर्य, वीरता, विद्या और योग्यता का ठिकाना नही। एक नाम से विख्यात यह मूर्ख यो सेठ पूनमचन्द बनेगा, ऐसा तो मैं सोच भी नही सकती थी।'

इतने पर भी रत्नमजरी पतगसिंह से बोलना नही

चाहती थी। पहले उसे मूर्ख जानने के कारण घृणा थी और अब घृणा का स्थान रोष ने ले लिया था। रत्नमंजरी को इस बात से रोष था कि यह मुझे धोखा देकर क्यो लाया। थोड़ी-सी झलक घृणा की, पूर्णभाव रोष का और भीतर छिपा अभिमान था—इन तीनो कारणो से रत्नमंजरी अब भी पतगसिह से नही बोलती थी। मान के कारण रत्नमजरी चाहती थी कि पहले एडू ही मुझसे बोले और मैं दो-चार उपालम्भ देकर उस पर प्रसन्न हो जाऊँ। मान नारी का धन है और मान करने तथा मान मनवाने मे उसे बड़ा रस मिलता है। पर पतगसिह तो उसका मान भग करने का निश्चय कर बैठा था।

भोजन बनाने वाली ब्राह्मणी बहुत दिनो से पतगसिह के घर का भोजन बनाती थी और देखती थी कि इन दोनो की जोडी इन्द्र-इन्द्राणी की-सी है। फिर भी कभी बोलते नही देखा। रत्नमंजरी और पतगसिह के अनबोले—मूक रहन-सहन को देखकर ब्राह्मणी बहुत चकराती। वह अपना कुतूहल शान्त नही कर पाई और अवसर देख एक दिन पतंगसिह से पूछ बैठी—

"सेठजी! सेठानी से ऐसा क्या अपराध हो गया है, जो आप उनसे बोलते नही है?"

पतगसिह ने आँखे फेर कर कहा—

"यह हमारी निजी बाते है। अब कभी मत पूछना।"

ब्राह्मणी सहम कर चुप हो गई। उसे बुरा भी लगा।

लेकिन फिर भी उसका मन नही माना तो फिर यही प्रश्न रत्नमजरी से भी पूछ लिया। रत्नमजरी तो भरी बैठी ही रहती थी। पतगसिह के ऊपर का क्रोध उसने ब्राह्मणी पर ही उतार डाला। ऐसी फटकार लगाई कि बेचारी रो पड़ी।

पेड़ से गिरने, छत से गिरने अथवा सिर मे चोट लगना हाथ पैर टूटना आदि की भयंकर चोट आदमी सहन कर लेता है, पर हल्का सा चाँटा सहन नही होता, क्योकि उसमे अपमान की भीतरी चोट होती है। अपमान और तिरस्कार की चोट खाकर मनुष्य बहुत जल्दी उबल पडता है और अपमानकर्ता का नुकसान कर उसे तकलीफ देकर अपने अपमान का बदला लेने की जी-भर चेष्टा करता है। अगर अपमानित व्यक्ति 'ओछा' या क्षुद्र होता है तो वह और भी अधिक खूँखार या खतरनाक बनकर साँप की तरह फुंकारने लगता है। हाँ तो, ब्राह्मणी अपने अपमान से कुढ गई और उसने रत्नमजरी तथा सेठ पूनमचन्द रूपी पतगसिह दोनो से बदला लेने का निश्चय कर लिया।

ब्राह्मणी सोचने लगी—'मैंने हित की बात पूछी। दोनो को एक करने की इच्छा से बात की और दोनो ने ही मुझे फटकार दिया। अब मैं भी इन दोनो को मजा चखाऊँगी। ऐसा कि दोनो सिर पकड कर रोयेंगे। सेठ ने तो फिर भी ज्यादा बुरा व्यवहार नही किया, पर सेठानी तो मुझे खाने दौड़ी। अब इस बार मैं इसे चैन मे रहने नही दूँगी। मैं भी ब्राह्मणी हूँ। चूल्हे जलाना जानती हूँ तो बुझाने मे भी देर नही लगती।

ब्राह्मणी ने अपना निश्चय पक्का कर लिया। झटपट खाना बनाया और अपने व्यवहार मे कोई परिवर्तन नही दिखाया। सेठ के काम से निश्चित होकर वह सीधी कालू नाई के घर पहुँची। कालू नाई का नाम तो वैसे कल्याणचन्द था, पर उसकी देह कान्ति के अनुरूप लोगो ने उसका नाम कालू रख लिया था। ताड के तने और कालू की देहकान्ति में कोई विशेष अन्तर न था। इसीलिए उसकी वनी वतरी मूछे मुँह के रग मे खप जाती थी, जैसे गोरे माथे पर चन्दन की विंदी मिल जाती है। कालू सव को एक आंख से देखता था फिर भी सम-दर्शी नही था। चूंकि एक आँख थी ही नही, और मन मे वडा कुटिल था। उसका एक दाँत टूटा हुआ था। जव मुंह फाड कर हँसता था तो उखडे दाँत का खाली स्थान विना किवाडो की खिडकी सा लगता था। यह तो रही उसके रूप की वात। अव स्वभाव की सुने। उसे पोतनपुर का नारद कहते थे। इधर की उधर भिडाने मे वह एक ही था। पति-पत्नी मे भिडाना तो उसके वाएँ हाथ का खेल था। राजा का वह मुँह लगा था। वहुत चतुर था। समस्या का हल सोचने मे उसे ज्यादा देर नही लगती थी। हँसोड था। हँसता भी था, हँसाता भी था। राजा का कृपापात्र होने का एक कारण तो यह था कि वह एक तरह से राजा वज्रनाभ का रहस्य सचिव था। दूसरे वह राजा की अन्तरग समस्याओ का हल तुरन्त निकाल देता था। राजा उसकी वात भी मानता था। डाँटता फटकारता भी था और पुरस्कार भी खूव देता था। वह विना पद का मत्री और

बिना गिरोह का सरदार था। इन सब गुणो के साथ उसमे एक अवगुण यही था कि अपनी बुद्धि का प्रयोग वह दूसरो को गिराने मे करता था। ऐसा वह धनोपार्जन की दृष्टि से किया करता था। उसके स्वभाव का सामूहिक नाम दें, तो उसे निस्संकोच एक धूर्त कह सकते है।

कालू की बुद्धि-विलक्षणता का एक ही उदाहरण पर्याप्त है। एक दिन उसके घर मे एक मेहमान आ गया। घर में आटा समाप्त हो गया था। जो कुछ था, उससे पाँच रोटियां बनी। कालू ने सोचा—पति-पत्नी ढाई-ढाई खालेंगे। आज की रात कट जायेगी। वैसे उस अकेले की खुराक ही दस रोटियाँ थी। पाँच छह पत्नी खाती थी। लेकिन गृहस्थी में सभी तरह का समय आ जाता है। जब रोटियाँ बनकर तैयार हो गई तो मेहमान आ धमका। कालू मेहमान के साथ बैठक मे बैठा था। पत्नी ने उसे अपने पास बुलाया और चिन्ता प्रकट की—

"तुम दुनियाँ की समस्याएँ हल करते हो। अब अपने घर की परेशानी दूर करो। घर मे थोडी चटनी है और कुल पाँच ही रोटियाँ हैं। मै तो बिना खाये रहूँगी ही। मेहमान की खातिर आप भी रह सकते है। पर मेहमान के सामने बात कैसे रहेगी? अगर उसने छठी माँगी तो?"

मुस्कराते हुए कालू बोला—

"मै भी बिना खाये कैसे रह सकता हूँ? मुझे तो मेहमान के साथ ही बैठना पडेगा। दोनो ढाई-ढाई खा लेंगे।"

पत्नी ने तुनक कर कहा—

"तो मेहमान से यह कहोगे कि आज घर मे आटा नही था ? तुम्हारी शेखी का क्या होगा ?"

कालू ने क्षण भर सोचा। फिर पत्नी के कान मे युक्ति बताकर कहा—

"हम दोनो खाने बैठते है। तू परोसना।"

कालू और उसके मेहमान दोनो साथ-साथ भोजन करने बैठे। कालू की पत्नी ने दोनो की थाली मे पहले एक-एक रोटी परोसी। दोनो खाने लगे। जब दोनो की रोटी समाप्त होने को आई तो कालू की पत्नी ने एक-एक रोटी और परोसने के लिहाज से कालू की ओर हाथ बढाया तो कालू क्रोध मे बोला—

"क्या करती है ? मुझे क्या तूने पशु समझ लिया है, जो परोसते चली जाती है ? एक तो रोटी इतनी भारी बनाई और ऊपर से दूसरी भी ले आई, मुझे नही चाहिए। मेहमान को दे।"

कालू की घुड़की सुनकर उसका मेहमान भीतर ही भीतर सूख गया और मन मे सोचा यदि मैं दो खा गया तो पशु समझा जाऊँगा। अत जब कालू की पत्नी ने उसकी ओर हाथ बढाया तो मेहमान ने दोनो हाथ थाली पर रोप लिए और दृढता से इन्कार लिया। इस पर सीखी-सिखाई कालू की पत्नी ने एक रोटी मेहमान के हाथ पर ही आग्रह पूर्वक रख दी। बनते हुए मेहमान ने कहा—

"यह तो ज्यादती होगी। कैसे खा सकूंगा ?"

वैसे मेहमान के पेट मे तो मूषक दौड़ रहे थे। पर शिष्टाचार और झेंप ने उसे न खाने के लिए विवश कर दिया था। कालू ने बात साधी—

"अरे भाई, आधी तो खा ही लो। आधी कुत्ते को डाल देना। मेहमान को तो आग्रह का लिहाज करना ही पड़ता है।"

मेहमान ने आधी रोटी खाई और आधी मन-मसोस कर थाली मे छोड़ी। फिर तीसरी लेने का तो प्रश्न ही नहीं था। दो रोटी कालू ने बचा ली और अपनी बात भी रख ली।

ऐसे चतुर किन्तु धूर्त कालू नाई के पास पतगसिंह का खाना बनाने वाली ब्राह्मणी पहुंची और आंखे मटका कर तथा हाथ नचाते हुए बोली—

"कालू! मैंने तुम्हारे लिए बड़ा अच्छा अवसर तलाश किया है। सच मानो, तुम्हारी पाँचो घी मे होंगी। लेकिन अकेले ही माल नही समेटने दूंगी, आधा मैं भी लूंगी।"

कालू बोला—

"मूल बात बता पण्डितानी! भूमिका तो बड़ी लम्बी चौड़ी बनाई तूने। कही ऐसा ही मत कर देना कि खोदा पहाड़ और निकली चूहिया।"

पण्डितानी बोली—

"तो सुनो कालू! जिस सेठ के यहाँ मैं रसोई बनाती

है, उसकी सेठानी सोलह साल की है और रूप मे ऐसी कि हमारे राजा वज्रनाभ की पटरानी इन्दुमती उसके सामने पानी भरे।"

"कालू! उसका नाम है, रत्नमंजरी। रत्नमजरी ऐसा रत्न है जो हमारे राजा के पास ही होना चाहिए। तुम राजा को भडकाओ और उन्हे उत्साहित करो तो वे रत्नमजरी को हथिया लेंगे और तुम्हारा घर सोने से भर देंगे।"

कालू के मुंह मे पानी भर आया। बोला—

"वधाई है पंडितानी, वधाई! मेरी सहायता के बिना राजा उसे अपने अन्त.पुर मे ला भी तो नही सकता। मैं ही उसे युक्ति भी बताऊँगा। तुम निश्चिन्त रहो, राजा से प्राप्त पुरस्कार मे तुम्हारा भी हिस्सा पक्का रहा।"

बदला लेने का काम पक्का कर ब्राह्मणी अपने घर गई और कालू सीधा राजा वज्रनाभ के पास गया। समय रात का था। राजा अपने निजी भवन मे थे। कालू ने प्रतिहारी से कहा—

"श्री महाराज से कहो कि उनका दासानुदास कालू आया है।"

कालू राजा का मुंह लगा है, इस रहस्य को सभी जानते थे—प्रतिहारी भी जानती थी। सो हंसती-मुस्काती राजा के पास पहुंची। राजा ने कालू को अपने पास बुलवा लिया। चापलूसी की साक्षात् प्रतिमा कालू ने भूमि तक मस्तक झुकाया और राजा के चरणो के पास बैठ गया। कानी आँख की

कीचड़ को पोछते हुए उसने राजा से कहा—

"श्री महाराज ! हमारे पोतनपुर मे एक ऐसा अद्वितीय रत्न है, जो आपकी मुट्ठी मे होना चाहिए और वह एक अनुपयुक्त व्यक्ति के पास पड़ा है। वह मूर्ख उस रत्न की कीमत भी नही जानता।"

राजा वज्रनाभ उत्सुक हुआ। पूछा—

"साफ-साफ कहो कालू ! पहेलियाँ मत बुझाओ।"

कालू बोला—

"स्वामी ! सेठ पूनमचन्द की सेठानी ऐसी सुन्दरी है कि जिसने उसे नही देखा, उसने कुछ देखा ही नही। विशेष बात यह है कि वह अपने पति सेठ पूनमचन्द से बोलती तक नही। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि आपके अन्त.पुर मे आने के बाद सेठानी रत्नमजरी अपने भाग्य को सराहेगी।"

पहले तो बहुत प्रसन्न हुए राजा। फिर कुछ उदास होकर बोला—

"कालू, सब बाते ठीक है, पर पूनमचन्द को तुम नहं जानते। वह असाधारण पुरुप है। उसके वश मे वेताल है शक्तिशाली पुरुप से उसकी उस पत्नी को छीनना भी दुष्कर है जो अपने पति से उदासीन रहती है।"

कालू बोला—

"स्वामी ! पूनमचन्द की शक्ति की आप तनिक भी चिन्ता न करें। बडी से बडी शक्ति को युक्ति मार देती है आपके दास इस कालू की युक्ति आज तक निष्फल-विफल न

हुई। अपनी एक ही युक्ति से पूनमचन्द का सफाया कराना मेरा काम है। फिर उसका घर और घरवाली—दोनो आपके होगे।"

कालू के कथन से राजा को रोमाच हो आया। पुलक कर बोला—

"तो फिर युक्ति अभी बताओ। एक बाण से मैं दो लक्ष्य वेधूंगा। रत्नमजरी को भी अपनी बना लूंगा और पूनमचन्द की हेकडी का बदला भी ले लूगा।"

कालू ने युक्ति बताई—

"स्वामी! आप अनवीधे और बड़े मोती पूनमचन्द से मंगायें। ये मोती दुर्लभ और अप्राप्य है। कहाँ से लायेगा पूनमचन्द? इसी चक्कर मे मारा-मारा फिरेगा। या तो मर जायगा और लौटेगा भी तो देखेगा कि रत्नमजरी आपके अन्त पुर मे है, तब फिर कुढ-कुढ कर ही मर जायगा।"

राजा ने अपने कण्ठ का हार उतार कर कालू को दिया और बोला—

"कालू! यह प्रारम्भ है। रत्नमजरी को आने दो। तुम्हारा घर रत्नो से भर दूंगा। अब सारी सफलता तुम्हारे ही ऊपर है।"

"मैं तो आपका दास हूँ।" कहते हुए कालू ने मस्तक झुकाया और उठकर चल दिया। इधर राजा ने पूरी रात उधेड-बुन मे ही काटी। सवेरा हुआ, नित्यकर्म से निवृत हो पद्मनाभ राजसभा मे गया और रत्नमडित सिंहासन की शोभा

बढ़ाई। जब सभी सचिव अमात्य यथास्थान बैठ गए और सेठ पूनमचन्द, नगरसेठ धनदत्त तथा राजपुरोहित आदि भी आ विराजे तो राजा ने सबको सम्बोधित करके कहा—

"मंत्रियो और सभासदो ! अपनी पट्टमहिषी के लिए मुझे एक सौ आठ अनवीधे दीर्घाकार मोतियो की आवश्यकता है। आप मे से जो भी यह कार्य कर सकेगा, उसे मैं मुंह मांगा पुरस्कार दूंगा।"

इस असम्भव कार्य को कौन करता ? सभा मे सन्नाटा छा गया। कोई कुछ नही बोला। राजा ने सेठ पूनमचन्द रूपी पतंगसिंह से कहा—

"सेठजी ! मुझे आशा है कि आप ही इस काम को कर सकेंगे। आपके अतिरिक्त इस सभा मे न तो मेरा कोई हितैषी है और न आपके समान सामर्थ्य वाला। अतः आप ही इस काम को कीजिए।"

कुछ देर मौन रहकर राजा ने पुनः कहा—

"सेठजी ! आपके वश मे वेताल है और आपने मुझे वचन भी दिया है कि मेरे सभी दुर्लभ-असभव कार्य आप करेंगे। आपकी इसी वचनबद्धता और साथ ही शक्ति सामर्थ्य को देखकर मेरे मन में दुर्लभ मोती प्राप्त करने की इच्छा हुई है।'

पतगसिंह ने वेतालशक्ति का चमत्कार दिखाकर राजा पर अपना जो प्रभाव जमाया था, उसे बनाये रखना चाहता ही था। इसीलिए वह असमर्थता प्रकट नही करना चाहता था, दूसरे वह राजाज्ञा का पालन करने के लिए वचनबद्ध भी था।

इसलिए पतंगसिह ने मोती लाना स्वीकार कर लिया। उसके पास कोई वेताल नही था, फिर भी उडन कम्बल और अदृश्य करने वाली शिरालजून वृक्ष की छाल की टोपी तो थी ही। और पुण्यो का सहयोग भी उसे प्राप्त था। यह काल उसके पुण्योदय का काल था।

इस राजाज्ञा के पीछे जो रहस्य था, उसे दो ही जानते थे। एक स्वय राजा वज्रनाभ और दूसरा कालू नाई। महामात्य अमितवाहन भी नही जानता था। अतः उसने सरल भाव से राजाज्ञा का समर्थन करते हुए कहा—

"राजन् ! नरपुगव सेठ पूनमचन्द के लिए यह काम कठिन भी नही है। वेताल उनके वश मे है ही। उससे ये क्या नही करा सकते ?"

यद्यपि पतगसिह ने मोती लाना स्वीकार कर लिया; फिर भी वह बड़े असमजस मे पड गया। उसने सोचा कि मेरे बढते प्रभाव को गिराने के लिए ही किसी ने राजा को यह योजना बताई है। अगर यह काम न करूँ तो वेताल वाली बात झूठी मानी जायगी और अगर करूँ तो कैसे करूँ ? अनविंधे मोती कहाँ मिलेगे ? इतना सोचने-विचारने पर भी पतगसिह राजा की इस चाल को नही समझ पाया कि यह राजा रत्नमजरी को हथियाना चाहता है। यो पतगसिह को मौन रहकर सोचते-विचारते देख राजा ने कहा—

"सेठ पूनमचन्द ! मार्गव्यय के लिए जो भी धन-साधन तुम्हे चाहिए, वह बताओ और इस काम का शुभारभ करो।"

अब पतगसिह वोला—

"राजन् ! मुझे वस एक महीने का समय चाहिए और कुछ नही। मुक्ता तो मैं लाऊँगा ही। इतने समय का एक लाख मुद्रा प्रतिदिन के हिसाव से श्रमशुल्क लूंगा, क्योकि मुं माँगा पुरस्कार देने की आप घोषणा कर चुके है। लेकि पुरस्कार नही लेता। अपनी सेवा का खरा मूल्य लेता हूं।"

राजा हँसा। वह अपने षड्यंत्र की सफलता का विचा कर हँसा था। हँसी के रहस्यमय कारण को छिपाते हुए राज ने पतगसिह से कहा—

"पूनमचन्द ! मोती लाने के वाद लौटकर तुम ज चाहोगे, वह मिलेगा। मुझे तुम्हारा प्रतिदिन का मूल्य दे सहर्ष स्वीकार है।"

फिर इसके वाद सध्या तक सभा की अन्य कार्यवाही च और जब यथासमय सभा विसर्जित हुई तो पतगसिह अपने घ गया। रात को जब सब सो गए तो पतगसिह अपने उस कम्वल पर वैठा और मन-ही-मन इच्छा की—मुझे रत्ना के उस तट भाग पर पहुँचा दो, जहाँ अनविंधे मोती मि जाएँ। वस इस सकल्प सकेत के साथ ही कम्वल पतगसि को लेकर उड़ चला। सवेरा होते-होते पतंगसिह सागर पर पहुँच गया। वहाँ एक भव्य वाटिका मे उसने एक प सुन्दरी को देखा तो दग रह गया। सूने तट पर एक मनो वाटिका और वाटिका मे सुन्दर भवन तथा भवन के वा वैठी असाधारण सुन्दरी अथवा वनदेवी रूप एक वाला। वा

ने पतगसिंह को देखा और पतगसिंह ने वाला को। दोनो मुस्कराये। वाला पतग को देखकर मुग्ध हो गई और पतग वाला को देखकर मोहित हो गया। पास जाकर पतगसिंह ने वाला से कहा—

"सुन्दरी! मेरे आश्चर्य का समाधान करो। तुम यहाँ अकेली क्यो और कैसे? कौन हो तुम?"

वाला बोली—

"प्राणेश्वर! मैं आपकी चरणदासी मुक्तावती हूँ। विद्याधर सुर की कन्या मैं यहाँ आपकी ही प्रतीक्षा कर रही हूँ। महाज्ञानी मुनि से मेरे पिता ने मेरे विवाह के विषय मे जब अपनी चिन्ता प्रकट की थी तो उन्होने ही बताया था कि इस स्थान पर एक नर आयेगा और वही मेरा वरण करेगा। अब आप मेरे साथ राजभवन चले।"

पतगसिंह ने अपने मन मे देव को करोडो धन्यवाद देकर कहा—देव! तेरी माया का पार नही। राजा वज्रनाभ ने प्रत्यक्ष मे मेरा पराभव करने का प्रयास किया और परोक्ष मे मुझे यह देवसुन्दरी दे दी। फिर प्रकट मे मुक्तावती से कहा—

"सुन्दरी! मैं अनविंधे मुक्ता लेने आया हूँ। जब तक वे मोती नही मिलेंगे, मै कुछ नही करूँगा।"

विद्याधर सुता मुक्तावती बोली—

"प्राणनाथ! मेरी काया मोतियो की ही बनी समझो। इसीलिए तो मैं मुक्तावती हूँ। आप जब चाहेगे और जितने चाहेगे, मैं उतने ही मुक्ता आपको दूंगी। मेरा विश्वास करें।"

मुक्तावती ने पतगसिह का हाथ पकडा और उसे अपने विमान की ओर ले चली। अपना उड़न कम्बल समेटकर पतंगसिह भी मुक्तावती के विमान मे बैठ गया। यथासमय विमान विद्याधर नगर पहुँचा। वहाँ धूमधाम से दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। कुछ दिन रस विलास मे बिताकर पतगसिह ने मुक्तावती से पोतनपुर चलने को कहा तो वह सहज ही तैयार हो गई। अपने रत्नकम्बल पर बैठाकर पतग-सिह मुक्तावती को पोतनपुर लाया और नगर के बाहर सवेरे-सवेरे उद्यान मे उतरा।

पोतनपुर के बहुत-से लोग उद्यान मे प्रातः भ्रमण करने आते थे। रत्नमजरी की एक दासी ने पतगसिह को देखा तो दौड़ी-दौडी उसके पास गई और बोली—

"स्वामिनी ! पूनमचन्द तो उद्यान मे बैठे है और उनके साथ कोई देवकन्या-सी भी है।"

देवकन्या-सी का नाम सुनते ही रत्नमजरी सौतिया डाह से तड़प उठी। पतंगसिह के अचानक चले जाने के बाद से वह बहुत चिन्तित और दु खी थी। वह सोचा करती थी—'मैंने उनकी बहुत उपेक्षा की। नगर भर उनका सम्मान करता है और मैं तो बोलती भी नही थी। इसीलिए रूठकर कही चले गए है। अब मैं उन्हे कहाँ पाऊँगी ? और उनके बिना मेरा यहाँ है भी कौन ? राजा वज्रनाभ के निमन्त्रण भी आये मेरे पास, पर मैं नही गई। तब राजा ने कहलवा दिया कि महीने भर बाद ही आना। अब यदि वे आ जाएँ तो मैं अपने

ग्रहकार प्रदर्शन के लिए क्षमा मागूंगी और उनसे बोलूंगी।'

पतगसिह के पीछे रत्नमजरी ये सब बातें सोचा करती थी और जब वह आ गया तो सौतिया डाह से तड़प उठी। रथ मे बैठकर उद्यान गई। मुक्तावती को जल कुण्ड के किनारे बैठे देखा और पतगसिह को देखा, कुछ दूर फूल तोडते हुए। रत्न-मंजरी मुक्तावती के पास पहुंच गई और अभिवादन करके बैठ गई। मुक्तावती ने पूछा—

"कौन हो बहन ? इसी नगर मे रहती हो ?"

रत्नमजरी कुछ उत्तर दे कि हाथ मे फूल लिये पतगसिह भी आ गया। उसे देख रत्नमजरी ने नीचे दृष्टि झुका ली। झेप और ग्लान ने उसे दबा लिया था। इतना ही नहीं, दो बूंद आंसू भी टपक पडे। पतगसिह समझ गया कि अब रत्न-मजरी का मान गल गया है। थोडी-सी कसर बाकी है, सो वह भी पूरी हो जायगी। पतगसिह ने मुक्तावती को इशारे मे कुछ समझा दिया सो मुक्तावती ने रत्नमंजरी का हाथ पकड़ कर कहा—

"उठो दीदी ! बड़ी तो तुम ही रहोगी। हम दोनो मिलकर रहेगी।"

रत्नमजरी पुलकित हो गई। दोनो को लेकर पतगसिह रथ मे बैठा और अपने भवन पर आ गया। उसके सेवक-मुनीमो ने खुशियां मनाई। भोजन बनाने वाली ब्राह्मणी भोजन बनाने आई तो चतुर रत्नमंजरी
और कहा—

"अब हमें तुम्हारी जरूरत नही है। आज तक का वेतन ले जाओ और छुट्टी करो।"

ब्राह्मणी पतगसिंह के पास पहुँची। पतंगसिंह ने मुक्तावती से पूछा—

"मुक्ता ! अब क्या सब लोग उपवास रखा करेंगे? ब्राह्मणी को क्यो छुट्टी दे रही हो ?"

यह काम रत्नमजरी और मुक्तावती की सलाह से ही हो रहा था। दोनो की मिलीभगत थी, इसलिए रत्नमंजरी की कारस्तानी का जवाब मुक्तावती ने ही दिया—

"स्वामी ! हम दो किसलिए है ? खाना मैं बनाऊंगी क्या हम ऐसी अभागिनी पत्नियाँ बने, जो पति को अपने हाथ से बनाकर खाना भी न खिलाये? महारानियां तक अपने राजा के लिए अपने हाथ से खाना बनाकर खिलाती हैं।"

पतगसिंह मन-ही-मन इस प्रस्ताव पर बहुत प्रसन्न हुआ उसने ब्राह्मणी से कह दिया—

"अब तो मजबूरी है। और कोई घर देख लो।"

ब्राह्मणी को निकाल ही दिया पतंगसिंह ने। वह सीधे कालू नाई के पास पहुँची और बोली—

"कालू ! कुछ पता भी है तुम्हें ? सेठ पूनमचन्द लौट कर आ गया और एक रम्भा को ले आया है। वह इन्द्र से भी बढ़कर है। उसकी देह को देखकर तो ऐसा लगता है जैसे हीरक खण्ड को तराश कर बनाई गई हो।"

"यह तो और भी अच्छा है।" कालू ने कानी आं

फटकाकर कहा—"अब दोनो ही हमारे राजा के अन्तःपुर में रहेंगी। मेरा नाम भी कालू है।"

"लेकिन उस नई मुक्तावती ने तो मेरी छुट्टी करा दी।" ब्राह्मणी ने रुआंसे स्वर मे कहा।

कालू बोला—

"तुम्हे अब किसकी नौकरी करनी है ? मैं राजा के अन्त.पुर मे इन दोनो रम्भाओ को पहुँचाऊँगा। बदले मे राजा जो कुछ देगा, उसमे से आधा तो तुम्हे अवश्य ही दूंगा।"

इस आश्वासन से ब्राह्मणी सुख की कल्पना मे डूब गई और कालू सीधा राजा के पास पहुँचा तथा सब बातें विस्तार से बताईं—समझाईं। सुनते ही राजा के मुंह मे पानी भर आया और कालू से बोला—

"कालू ! अगर तू इन दोनो को मेरी अकशायिनी बना देगा तो मैं तुझे ही अमितवाहन की जगह प्रधानमत्री बना दूंगा और उस ब्राह्मणी का दारिद्रय भी खो दूंगा।"

कालू ने शेखी मारी—

"स्वामी ! आप चिन्ता क्यो करते है ? मेरी पहली युक्ति से ही एक से दो हो गई। आज रात को मैं दूसरी योजना बना लूंगा।"

यह आश्वासन दे कालू अपने घर को गया। दीवारो के भी कान होते है, यह बात झूठ थोडे ही है। कालू तथा राजा का समस्त वार्तालाप महामंत्री अमितवाहन ने ज्यो का त्यो सुन लिया। वह राजा से मिलने उसके निजी कक्ष मे जा रहा

था। इन दोनो की बातें सुन ठिठक गया और सुनकर उल्टे पैरो लौट आया। फिर सीधा पतगसिह के पास जाकर बोला—

"सेठ जी! आप राजा वज्रनाभ से सावधान रहना। उसके आगामी पड्यंत्र और योजनाएँ आपको मिटाने तथा आपकी पत्नियो को हथियाने के लिए होंगी। इस सबमे काले कालू नाई का विशेप हाथ है। आपके यहाँ भोजन बनाने वाली ब्राह्मणी भी साथ दे रही है।"

पतंगसिह ने मंत्री से कहा—

"मंत्रिवर! इस रहस्योद्घाटन के लिए मै आपका बहुत आभारी हूँ। मैं तो क्या सावधान रहूँगा, पर मेरे पाप-पुण्य सदा सावधान रहेगे। आप देखना कालू और राजा—दोनो मुंह की खाते रहेगे। मारने-मिटानेवाला तो कोई और ही होता है। राजा तो पानी का एक बुद्बुदा है। जाने कितने राजा अपने अहकार की आग मे जल गये।"

इसके बाद मंत्री अपने घर चला गया और राजा के आदमी दूसरे दिन पतगसिह के पास आये और कहा कि राजा ने अनविधे मोती मंगाये हैं। पतंगसिह ने उत्तर दिया—

"अभी महीना पूरा होने मे तीन दिन शेप हैं। अवधि पूरी होने पर ही मैं मोती लेकर आऊँगा।"

सन्देश लेकर राजसेवक चले गए और पतगसिह ने मुक्तावती से कहा—

"मुक्ता! तेरे आश्वासन पर मैं निश्चिन्त हूँ। अवधि बीत चली है। मुझे मुक्ता चाहिए।"

मुक्तावती बोली—

"स्वामी ! अन्तिम दिन आप जितने मुक्ता चाहे उतने पुष्प ला दीजिए। तुरन्त ही मोती बनाकर दे दूंगी।"

तीसरे दिन पतंगसिंह स्वय फूल तोड़कर लाया। उन्हे लेकर मुक्तावती स्नानागार मे गई। फूलो को जल मे डुवाकर निकाला तो उनसे जो बूंदे टपकी वे सव अनविंधे मोती वन गई। ढेर सारे मोती मुक्तावती ने वना दिये। आश्चर्य से पतंगसिंह ने मोती देखे और पोट बाँधकर राजसभा पहुँचा। इतने सारे मोतियो का ढेर देखकर राजसभा धन्य-धन्य कह उठी। राजा ने भी वनावटी रूप मे पतगसिंह के पुरुषार्थ को सराहा और उसे एक लाख स्वर्ण मुद्राओ के हिसाव से एक महीने की तीस लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेट की।

यथासमय सभा विसर्जित हुई। राजा वज्रनाभ रातभर बेचैन रहा। करवटें वदल-वदल कर रात काटी। कालू को बुलाया। अभी तक कालू नई योजना नही वना पाया, यह जानकर राजा को घोर निराशा हुई। लेकिन कालू ने विश्वास दिलाया कि मैं जल्दी ही वडी अच्छी युक्ति वनाकर तैयार करूँगा। ऐसी कि सफलता आपके चरण चूमेगी। इसके साथ ही कालू ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए कहा—

"स्वामिन् ! वहुत जल्दी ही सेठ पूनमचन्द को वाहर भेजने से उसे सन्देह होगा। इसलिए कुछ दिन वाद ही युक्ति का वाण चलाना उचित होगा।"

राजा ने कहा—

"कालू ! सन्देह को दूर फेंको । मेरा एक-एक क्षण एक युग-सा बीतता है। तुम्हे महामात्य बनाने की घोषणा तो मैं कर ही चुका हूँ, तुम्हें अनेक गाँवो की जागीर भी दूंगा। अब विलम्ब मैं नही सह सकूँगा ।"

कालू बोला—

"स्वामी ! यदि ऐसी ही बात है तो कल सवेरे ब्राह्म मुहूर्त में मैं आपको योजना बता जाऊँगा। आप सवेरे ही राजसभा मे बैठकर उसे क्रियान्वित कर दीजिए। इस बार सफलता निश्चित ही मिलेगी।"

आश्वस्त होकर राजा ने कालू को नीलम का एक हार और भी दिया। खुशी-खुशी कालू अपने घर गया। नीलम का हार अपनी पत्नी के कण्ठ मे डालते हुए कालू बोला—

"प्रिये ! अभी तो तू देखना मेरे ठाट। अभी तो शुरूआत है।"

उसकी पत्नी ने इतना ही कहा—

"स्वामी ! पापो का प्रारम्भ सुखदाई और अन्त महा-दुखदाई होता है।"

"पाप-पुण्य मूर्खों की कल्पना है।" यह कहते हुए कालू ने प्रिया को वक्ष से लगा लिया और फिर उसका मन योजना बनाने मे लग गया। □

7

"अनविंधा लाल दुर्लभ और प्रायः असम्भव ही है। यह कही नही मिलेगा। आप पूनमचन्द सेठ को इसे लेने भेजें। इसे वह नही ला सकेगा और इसीलिए जीवित नही लौट सकता।"

कालू नाई ने यह परामर्श राजा वज्रनाभ को दिया। राजा ने उसे तुरन्त—दूसरे दिन कार्यान्वित किया। इस असम्भव-से कार्य के लिए भी भाग्य का धनी पतगसिह तैयार हो गया और राजा से कहा—

"ठीक है, मैं लाल भी ले आऊँगा। पर दो महीने की अवधि देनी होगी और वेतन वही जो पहले दिया था, देना होगा। अर्थात् प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण मुद्रा के हिसाब से साठ लाख स्वर्ण मुद्रा।"

राजा ने स्वीकृति दी। पतंगसिह विद्याधर सीधा मुक्तावती के पास पहुँचा और कहा—

"प्राणाधिके! तुम्हारे भरोसे मैंने राजा की चुनोती स्वीकार कर ली है। ऐसे लालो का प्रबन्ध कैसे होगा?"

मुक्तावती ने आश्वासन दिया—

"नाथ! आप चिन्ता न करे। हम चार बहनो मे अलग-अलग रत्नो को बनाने के गुण है। जैसे मैंने मोती दिये, ऐसे

ही मेरी बहन लीलावती लाल स्वामिनी है। लोकदुर्लभ लाल वही आपको देगी। मेरी मुद्रिका आपकी उंगली में है ही इसे वह पहचानती है। फिर भी मेरी पाती ले जाइये और उसी के पास जाइए।"

उड़नकम्बल पर बैठकर पतंगसिंह लालद्वीप उड़ गया। लीलावती ने देवरूप पतंगसिंह को देखा तो उस पर मोहित हो गई और यह प्रतीति भी हो गई कि यह मेरे भगिनीपति है। लीलावती भी कुमारी थी। उसने पतंगसिंह को स्वागत-पूर्वक बैठाया और बोली—

"प्राणाधार ! हम चारों बहनें एक ही पति की चरण-दासी बनेंगी, यह एक जंघाचारी मुनि की भविष्यवाणी थी। यह भेद शायद मेरी बहन मुक्तावती को भी नहीं मालूम। इसी-लिए उसने पहले आपको मेरे पास नहीं भेजा। अब मेरे भाग्य ने भेज दिया है तो मैं पहले आपके जीवन से जुड़ूँगी।"

"यह तो और भी अच्छा है।" पतंगसिंह ने कहा—"तुम सब बहनें ही पुष्प की पंखुड़ियाँ बनकर रहो तो वह पुष्प भी तो धन्य होगा। लेकिन मुझे अपनी अन्य बहनों का पता भी बता दो तो मैं उन्हें भी साथ लेता चलूँ।"

लीलावती ने कहा—

"स्वामी ! जैसे मेरा पता बहन मुक्तावती को मालूम था, वैसे ही अन्यों का भी उसे मालूम होगा। मुझे अपनी बहनों का पता मालूम नहीं है। यदि मुक्तावती को भी उनका पता न मालूम हो तो दैव कोई-न-कोई युक्ति स्वयं बना लेगा।

जो काम होना है, वह तो होगा ही। समय से पहले कोई काम नही होता। मैं भी तो जाने कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।"

फिर लीलावती ने पतगसिह के कण्ठ मे वरमाला डाल कर गाधर्व-विवाह किया। अब पतगसिह ने अपने मतलब की बात कही—

"प्रिये ! उन लालो का प्रबन्ध तो करो, जिनके लिए मैं आया हूं।"

लीलावती ने आश्वासन दिया—

"वे तो मेरे साथ रहते है। जब कहेगे, तब उतने ही लाल दे दूंगी, जितने आप चाहेगे।"

इससे बाद पतगसिह लीलावती को लेकर पोतनपुर आ गया। दोनो बहने आपस मे मिलकर बड़ी प्रसन्न हुईं। रत्न-मजरी ने भी इस प्रसन्नता मे योग दिया। तीनो त्रिवेणी सम रस प्रवाहित करती थी। जब दो महीने बीतने को आये तो पतगसिह ने रत्नमजरी और मुक्तावती की उपस्थिति मे लीलावती से कहा—

"प्रिये ! मेरी चिन्ता दूर करो। क्या तुम्हारे लिए भी फूल लाने पडेगे ?"

उत्तर दिया मुक्तावती ने—

"स्वामी ! जब मेरी बहन लीलावती हँसती है, तब इसके मुंह से लाल झड़ते है। अत. अब मेरी सहोदरा को हँसाना आपका काम है।"

पतंगसिंह बोला—

"इसके लिए तो मेरे पास एक ही उपाय है कि मैं अपनी लालप्रसविनी प्रिया के गुदगुदी करूँ।"

"नही, इससे काम नही बनेगा।" मुक्तावती ने कहा—"यह हँसी तो नकली हँसी होगी। कोई बात सुनकर स्वतः ही हँसी फूट पड़े, तब लाल झड़ेंगे।"

इसके साथ ही लीलावती बोली—

"इसके अलावा आप मेरे गुदगुदी कर भी तो नहीं सकेंगे, क्योकि आपके दो ही हाथ है और मेरे छह है। हम तीनो मिलकर आपको परेशान कर देगी।"

"तो तुम तीनो ने सलाह कर ली है? अच्छा तो फिर सुनाता हूँ एक हास्यकथा। ऐसी कि तुम्हे हँसना ही पड़ेगा।"

पतंगसिंह अपनी प्रियाओ को हास्यकथा सुनाने लगा—

तीन यार थे। गाँव मे रहते थे तीनो। तीनों कुछ आवारा ढग के थे। काम-धाम कुछ करते नही थे, यों ही निरुद्देश्य सैर-सपाटे करते थे। तीनो के घर पर थोड़ी-बहुत खेती होती थी, सो उसे इनके पिता आदि सम्हालते थे। जब इनके घुमक्कड़पने से इनके अभिभावक तग आ गये तो उन्होने उन्हे फटकार कर कहा—

"कहीं जा कर काम-धाम क्यो नही करते? तुम तीनों का ऐसा डील-डौल है कि चलते हो तो धरती हिलती है, फिर भी बैठकर खाते हो।"

तीनो ने सलाह की कि किसी नगर मे जाकर मजूरी

करेंगे। कुछ कमाकर ही गाँव वापस आयेगे। ऐसा निश्चय कर तीनो एक नगर मे पहुँच गये। इन तीनो मे यद्यपि गहरी मित्रता थी, पर दो कुछ चालाक थे और एक भोला था। ये दोनो कभी-कभी एक हो जाते थे और तीसरे भोले को छकाते थे। लेकिन ऐसा ही छकाते कि मित्रता की सीमा के भीतर ही होता था। भोला इसका बुरा नही मानता था। इस भोले-भुलक्कड का नाम भी भोला ही था। शेष दोनो का नाम क्रमश: चालू और लालू था।

इतनी कथा सुनते ही मुक्तावती मुस्कराई और बोली—

"इन्हे कोई अच्छे नाम ही नही मिले, जो ऐसे भौंडे नाम रख लिये ?"

पतगसिह बोला—

"हँसना मना है प्रिये ! बीच मे बात मत करो। पहले पूरी कहानी सुन लो।"

चालू, कालू और भोला तीनो नगर मे पहुँचे। सध्या को पहुँचे थे तीनो। विचार हुआ, अब ठहरे कहाँ और खायेंगे भी क्या ? क्योकि मजूरी तो कल दिन मे ही मिलेगी।

चालू ने परामर्श दिया—

"नगर से कुछ हटकर किसी सूने स्थान पर रात काट लेंगे। गरमी के दिन तो है ही और एक र
एक रात का क्या काटना ?"

"और खाना ?" लालू ने ।

समाधान किया—

"एक रजत मुद्रा मेरे पास है। तुम्हारे पास भी मु होगा ही। तीनो बराबर-बराबर धन मिलाकर खीर बनायेंगे।"

भोला ने कहा—

"लेकिन मेरे पास तो कुछ नही है। मै तो एक रा भूखा रह जाऊँगा। सवेरे की सवेरे देखी जायगी।"

लालू बोला—

"नही है तो कोई बात नही। हम दोनो ही खीर सामान ले आयेंगे और उसी मे से तीनो खायेंगे। ऐसा कभी गाँव मे भी नही हुआ तो यहाँ परदेस मे यह कैसे हो कि दो मित्र खायें और एक बैठा देखता रहे?"

चालू तो चालू था ही। इस निर्णय मे उसने सशो किया—

"बात तो ठीक है। पर ऐसे खाने मे भोला हीन भाव का अनुभव करेगा। अतः हमे भोला धन के बदले श्रम देगा फिर खीर पर तीनों का न्यायपूर्ण अधिकार होगा। भोला खी पका लेगा और हम नगर घूम आयेंगे।"

इस प्रस्ताव मे भोला बहुत प्रसन्न हुआ, क्योकि उस गौरव की रक्षा भी हो गई। उसने सोचा, अब मै दयापात्र ब कर नही, बल्कि हिस्सेदार के रूप में अधिकारपूर्वक खी खाऊँगा। तीनो बाजार गये। एक हाँडी, चावल, दूध, ग खरीद लिया। थोड़े-काजू मखाने भी ले लिये। लकड़ी भ

खरीद ली। तीनो अपने पड़ाव पर आये।

जहाँ ये तीनो ठहरे थे, वह भूमि एक कच्चा मैदान थी। नीम का एक पेड़ भी खडा था। धरती खोदकर चूल्हा बना लिया। आँच चढाकर हाँडी मे दूध चढा दिया और खीर पकने लगी। चालू-लालू ने भोला से कहा—

"भोला! तू खीर बनाकर तैयार कर ले। हम नगर देखकर अभी आते है।"

भोला ने मौन स्वीकृति दे दी। चालू-लालू नगर घूमने चले गये। मार्ग मे ही चालू ने लालू से कहा—

"लालू! भोला मुफ्त मे ही खीर खायेगा। उसकी तो एक कौडी भी नही लगी। कोई ऐसी चाल चलो कि उसका तिरस्कार भी न हो और खीर हमी दोनो खाये।"

"ऐसा कैसे हो सकता है?" लालू बोला—"भोला खीर बनाने का श्रम भी तो करेगा। तुम्ही ने तो यह प्रस्ताव रखा था कि धन के बदले भोला श्रम दे। आखिर तो वह हमारा मित्र ही है।"

"मित्र तो है। मैं कब इन्कार करता हूँ?" चालू बोला—"पर खीर बनाने मे मेहनत ही क्या है? खीर तो अपने-आप बनती है। भोला पास ही तो बैठा है। अगर और कुछ न कर सको तो इतना ही करो कि हम दोनो ज्यादा खाये और उसे थोड़ी मिले।"

"तुम्ही कोई युक्ति निकालो।" यह कह लालू ने अपना पिण्ड छुडाया। कुछ देर दोनो मौन रहे। फिर चालू ने उत्साह

से कहा—

"मिल गई। एक युक्ति मिल गई। हम दोनो कहेंगे कि अब सवेरे ही खीर खायेंगे। सवेरे एक शर्त यह होगी कि तीनो अपना-अपना सपना सुनायेंगे। जिसका सपना सबसे अच्छा होगा, उसे ही खीर ज्यादा मिलेगी। पहले हम दोनो ही सपना सुनायेंगे। हमारा सपना तो एक-सा ही होगा और हम ऐसा बनाकर सपना सुनायेंगे कि और अच्छे सपने की गुंजाइश भोला के लिए छोड़ेंगे ही नही।"

लालू हँस दिया। बोला—

"ठीक तो रहेगी यह युक्ति। लेकिन भोला समझ तो जायगा कि हमने मनगढन्त सपना सुनाकर उसे छला है।"

"उसे समझा देंगे।" चालू ने बात समाप्त की। लालू ने बुझे मन से कहा—

"तुम्हारा साथ तो मैं दूंगा, पर यह मित्र-धर्म के विपरीत है। यदि मित्रो के व्यवहार मे कपट का अंश भी हो तो फिर मित्रता उसी तरह अपावन हो जाती है, जैसे कटोरे भर गो-दुग्ध मे एक बूंद मदिरा डालने से अपावन हो जाता है।"

चालू ने अपनी झेंप उतारी—

"लालू, लेकिन यह तो मात्र विनोद कपट है। बाद में हम इसका संशोधन भी अवश्य कर लेंगे। क्योंकि बात तुम्हारी भी सही है। कपट तो विनोद में भी त्याज्य है। संशोधन यह कि भोला को मिठाई खरीद कर खिला देंगे और यह भी कह देंगे कि हमने मजाक किया था।"

"फिर तो मैं मन से तुम्हारे ही साथ हूँ।"

इस तरह बातें करते हुए दोनो नगर घूमकर पड़ाव पर लौटे। भोला खीर बना चुका था। चालू ने पूछा—

"भोला खीर बन गई?"

"बन तो गई।" भोला ने कहा—"पर एक समस्या खड़ी हो गई। हांडी मे खीर ठडी कब तक होगी। एक प्रहर लग जायगा। तब तो बहुत रात हो जायगी। यदि तीन पत्तले भी ले आते तो अच्छा था।"

चालू ने कहा—

"भोला! अब खीर हांडी मे रखी रहने दो। अब तो सवेरे ही खायेंगे। रातभर मे तो हिम-सी ठडी हो जायगी। सवेरे पत्तलें भी ले आयेंगे।"

लालू बोला—

"लेकिन भूखे रहकर हम तीनो ही खीर का सपना देखते रहेंगे। नीद भी तो ढग से नही आयेगी।"

चालू ने लालू से कहा—

"ओ लालू! सपने की बात तूने खूब कही। कल हम तीनो ही अपना-अपना सपना सुनायेंगे। जिसका सपना सबसे अच्छा होगा, आधी खीर उसको मिलेगी। फिर उससे कम दूसरे, कम अच्छे सपने वाले को और सबसे कम उसे जिसका सपना सबसे बुरा होगा।"

निश्चय हो गया। तीनो सो गये। भोला यद्यपि सच-मुच भोला था, पर आग का गोला भी था। वह नही सोया।

जब उसने निश्चय कर लिया कि चालू और लालू सो गये हैं तो चुपचाप उठा और हांडी की सब खीर खा गया। रीती हांडी ढक कर रख दी और चादर ओढ कर सो गया। नींद भी उसे गहरी आई।

भूख के कारण चालू और लालू को नींद नाममात्र को ही आई और इसीलिए वे जल्दी उठे। भोला को सोते देखा तो उसे आवाजें दी। नही उठा तो चादर हटा कर झकझोरा तब वह जागा और मीठी अंगड़ाई लेते हुए अपनी पीठ पर हाथ रखकर बोला—

"मित्रो ! मेरी तो पीठ ही टूट गई। दर्द के मारे मरा जा रहा हूँ। तुमने नाहक जगाया। अभी सोने देते। सूरज निकलने मे तो बहुत देर है अभी।"

चालू-लालू का ध्यान पीठ दर्द वाली बात पर नहीं गया, क्योंकि उन्हे अपना सपना सुनाने की उतावली थी। सो चालू बोला—

"अरे भोला, यही तो उठने का समय है। अब तू पहले हम दोनो का सपना सुन ले, फिर अपना भी सुनाना।"

भोला बोला—

"तुम्हीं सुनाओ। मेरा सपना क्या है, अपना दुखड़ा रोना है। सो तुम मित्रो के सामने अपना दुखड़ा रोऊँगा।"

लालू ने पूछा—

"तब तो तूने बहुत बुरा सपना देखा होगा ?"

रुआंसा-सा होकर भोला ने कहा—

"इतना बुरा सपना देखा कि मेरे दुश्मन भी न देखें। सपना क्या साक्षात् मौत देखी।"

भोला के बुद्धूपन पर मन-ही-मन चालू और लालू हँसे। फिर चालू ने अपना सपना सुनाते हुए कहा—

"मैं तो रात सपने मे देवविमान मे पहुँच गया था देवसुखो का क्या वर्णन करूँ। देवियो और अप्सराओ ने मेरे सामने नृत्य किये। ऐसे सुन्दर सपने को देखकर मैं तो धन्य हो गया। दो अप्सराओ के साथ मैंने बडे सैर-सपाटे किये।"

फिर लालू ने अपना सुनाया—

"मैं भी सपने मे स्वर्ग पहुँच गया था। एक अप्सरा के साथ मैंने नन्दनवन मे स्वर्ण हिडोले पर झूला झूला। स्वर्ग के सरोवरो मे मैंने सोने के बड़े-बडे कमल देखे। ऐसे देखे।"

'ऐसे देखे' कहते हुए लालू ने अपने दोनो हाथ फैलाकर कमलो का आकार बताया। फिर दोनो ने आपस मे एक दूसरे के सपने की सराहना करते हुए कहा कि ये सपने तो सुन्दरतम सपने है। फिर दोनो बोले—

"भोला! अब तुम भी सुना डालो।"

पीठ पर हाथ रखते हुए भोला ने दर्द भरी आह मारी और बोला—

"क्या बताऊँ भैया! रात एक [illegible] आ गया [illegible]
हाथ मे मुद्गर था। उसने मुझे [illegible] ला।
और था पहले। मैंने कहा—मैं [illegible] ।
मेरे मित्रो का भी तो हिस्सा है [illegible] । था।

जवाब नहीं दिया और मेरी पीठ में जोर से एक मुद्‍गर मारा। मेरी तो कमर ही टूट गई। दर्द के मारे रोने लगा और हाथ जोड़कर यक्ष से प्रार्थना की कि अब मत मारना। अब यदि मारा तो मेरे प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। यक्ष बोला—अच्छा नहीं मारूँगा। पर सब खीर खानी पड़ेगी। सब चाट जाना। अगर तनिक भी छोड़ी तो यह मुद्‍गर देह को चकनाचूर कर दूंगा।

"मित्रो! प्राणभय से मुझे सब खीर खानी पड़ी। मुद्‍गर ताने यक्ष मेरे सिर पर खड़ा रहा। क्या करता? मजबूरी थी। तुमने सपने देखे और मैंने साक्षात् मौत देखी।"

चालू तो बौखला गया। बोला—

"तो क्या सचमुच तूने सारी खीर खा डाली?"

"और क्या झूठ?" भोला ने भोलेपन से ही कहा—"यक्ष तो सचमुच को ही आया था।"

लालू भी चमका। बोला—

"तो तूने हमें क्यों नहीं जगाया?"

भोला ने कहा—

"जगाया था। बीसियों आवाजें दीं। पर तुम तो वहाँ थे ही नहीं। स्वर्ग में अप्सराओं के साथ सैर-सपाटे कर रहे थे।"

इतना सुना कि लीलावती खिलखिला कर हँस पड़ी। हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। तारों का ढेर लग गया। रत्नमंजरी और मुक्तावली ने तो हँसते-हँसते मुँह में कपड़ा

लिया। वडी देर मे तीनो की हँसी रुकी। मुक्तावती बोली—

"हास्यकथा तो आपने ऐसी सुनाई कि जव-जव याद आयेगी, विना हँसे नही रहा जायगा।"

पतगसिंह ने लालो को वटोर लिया और यथादिन उन्हे लेकर राजा वज्रनाभ की सभा मे उपस्थित हुआ। दुर्लभ लाल देखकर राजा को वनावटी खुशी दिखानी पड़ी। कालू भी सभा मे था। उसका वुरा हाल था। उसे अब डर था कि इस असफलता पर राजा उल्टा पड जायेगा और मुझे छोडेगा नही। यह सोच कालू चुपचाप सभा से खिसक गया और अधोमुख शर्मा ब्राह्मण के पास पहुँचा। यह ब्राह्मण भी कालू की तरह एक आँख से काना था और इसमे गोस्वामी तुलसी-दासजी के कहे अनुसार ये विशेषताएँ थी—

'जे विनु काज दाहिने वाएँ' और जो, 'देखि न सकहिं पराइ विभूती।'

दुष्ट लोगो का यह जन्मजात स्वभाव ही होता है कि वे अकारण ही दूसरो के अनुकूल से प्रतिकूल—दायें से वायें हो जाते हैं और कभी भी दूसरो का ऐश्वर्य-विभूति देख नही सकते। ये दूसरे के दोषो को सहस्र [illegible] मे [illegible] और निन्दारस को ये [illegible]। वडे च[illegible]

र्मा ऐसे [illegible] मनुष्य

वताये [illegible]।

[illegible] ने [illegible] धं मु

"गुरुदेव, अब तो आप ही मेरे प्राण बचा सकते हैं। राजा वज्रनाभ अब मुझे जीवित नही छोड़ेगा। वह सेठ पूनम चन्द की दोनों पत्नियो को अपनी बनाना चाहता है और रव मेरी युक्तियाँ विफल हो गई है।"

"अब तक का पूर्ण वृत्तान्त ब्योरे से सुनाओ।" शर्मा ने गम्भीरता से आदेश दिया। कालू नाई ने अब तक की सब बाते सुना डाली। वह अभी पतगसिह की दो पत्नियो के बारे मे ही जानता था। तीसरी लीलावती के बारे मे अनभिज्ञ था। क्योंकि पहली रत्नमजरी और दूसरी मुक्तावती का भेद पतंगसिह का भोजन बनाने वाली ब्राह्मणी ने दिया था और वह अब हटा दी गई थी।

ब्राह्मण ने बहुत देर तक सोचा फिर उसमें लोभ जागा और बोला—

"मुझे राजा के पास ले चलो। सफलता न मिले ऐसा तो हो ही नहीं सकता। युक्ति मैं राजा को ही बताऊँगा और सफलता का पुरस्कार भी मैं ही....।"

बीच मे ही कालू बोला—

"बिल्कुल गुरुदेव बिल्कुल! सब कुछ आप ही लेंगे। मैं तो हिम्मत हार गया। मेरे प्राण तो बचेंगे।"

ब्राह्मण ने शिष्य का हौसला बढ़ाया—

"जब तक साँस रहे, तब तक हिम्मत हारनी कैसी? जो हिम्मत हार जाते है, वे जीवित शव के समान हैं।"

अधोमुख शर्मा के सुवचनों को कौन धन्य नहीं कहेगा?

पर इन सुन्दर वचनो के पीछे उद्देश्य कितना बुरा था। बुद्धि, युक्ति, ज्ञान, तप—ये सब उस समय पाप हो जाते हैं, जब इनका प्रयोग बुरे काम की पूर्ति मे किया जाता है।

ब्राह्मण का साहस न हारने का अदम्य पुरुषार्थ और उसका पाण्डित्य इसी काम के लिए था कि वह राजा को परदारानुरागी बनाकर नरकोन्मुख बनाये और अकारण पतगसिंह का अनिष्ट करे। आप विश्वास करें, मनुष्य की क्षमताओ का ठिकाना नही है। वह अपनी अनन्त शक्ति को जमाकर नरक भी प्राप्त कर सकता है और स्वर्ग तथा मोक्ष भी। वहुत से साधक तप द्वारा दुर्लभ लब्धियाँ प्राप्त कर लेते है और प्रतिशोध भावना से पीडित अपनी लब्धियो से नगर-गाँव भस्म कर डालते है। लेकिन आश्चर्य भी क्यो करे? ससार तो गुण-दोषमय है। इसमे भले के साथ बुरे भी है। इस द्वद्वात्मक जगत मे यदि कचनपुर के मन्त्री गुणवर्धन, पतगसिह के गुरु आचार्य और स्वय पतगसिह जैसे चरित्रवीर भी है तो कचनपुर के राजा जितशत्रु, पोतनपुर के राजा वज्रनाभ और कालू तथा अधोमुख शर्मा जैसे ज्ञान-पापी भी है।

जो भी हो, अपने गुरु अधोमुख शर्मा को लेकर कालू नाई राजा वज्रनाभ के पास पहुँचा। राजा बडी व्यग्रता से कालू नाई की प्रतीक्षा कर ही रहा था। कालू ने अपने धूर्त गुरु का परिचय कराया—

"महाराज! ये मेरे गुरु है। हर ... सफल ... इनकी बाई मुट्ठी मे रहती है। वैसे भी ...

छिपाता और अब आपसे प्रार्थना करता हूं कि हम दोनो मि कर आपको वहां तक अवश्य पहुंचा देंगे, जहां आप जा चाहते हैं।"

राजा बोला—

"कालू ! तुम्हारे भरोसे पर ही मैंने कदम आ बढ़ाया था। मैं तो जानता ही था कि सेठ पूनमचंद असाधार पुरुष है। उसने अपने वेताल द्वारा मेरी तीन चीजें, ह मुकुट और खड्ग मँगवा लिये थे, तभी मैं समझ गया था वह कुछ है। अब मैं अपने दो प्रयोगों में विफल हो चुका हूं दोनों बार में वह नब्बे लाख स्वर्णमुद्रा मुझसे ले चुका, सो अ और मैं उसकी देवांगना जैसी रमणियों को अभी तक द भी नहीं देख पाया। बोलो क्या कहते हो ?"

अधोमुख ब्राह्मण ने राजा को धैर्य बँधाते हुए कहा

"राजन् ! बस, दो बार की विफलता पर ही आ निराश हो गये ? दो सीढ़ियां चढ़ कर आप कभी अपने भ के पांचवें खण्ड पर नहीं पहुंच सकते। सीढ़ियां तो सभी च पड़ती हैं। ये विफलताएँ भी सीढ़ियां हैं। एक दिन आप सफलता अवश्य मिलेगी। मेरा शिष्य कालू का ही दांव विफल नहीं होता। फिर अब तो गुरु-शिष्य दोनों आ लिए प्राणों की बाजी लगा देंगे।"

राजा ने व्यग्रता से कहा—

"विप्रवर ! जैसे भी हो, सेठ पूनमचन्द की दोनों स्त्रियों को मेरा बना दो। कालू को तो मैं महामन्त्री बना

ही, आपको भी राजपुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित करूँगा।"

अधोमुख बोला—

"राजन्! पहले आप पूनमचन्द सेठ को सपत्नीक भोज का निमन्त्रण दें। उसकी दोनों पत्नियाँ यहाँ आयेंगी तो आप उन्हें अच्छी तरह देख सकेंगे। इसी सिलसिले में आप उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का एक अवसर भी प्राप्त कर लेंगे।"

"उसके बाद?" राजा ने संक्षिप्त प्रश्न किया।

"उसके बाद, पूनमचन्द को मिटाने की योजना बनाई जायेगी।"

राजा के प्रश्न का उत्तर कालू ने दिया। फिर यह कुमंत्रणा सभा विसर्जित हो गई। राजा ने मन्त्री अमितवाहन को बुलाया और उससे कहा—

"मन्त्रिवर! सेठ पूनमचन्द के यहाँ हम दोनों ने जलपान किया है। अब हमारा भी कर्त्तव्य है कि उन्हें हम अपने यहाँ निमन्त्रित कर उनका स्वागत करें। तुम्हारे माध्यम से ही हमारा पारस्परिक परिचय हुआ है। एक तो आपसी व्यवहार की बात है। दूसरे, असाधारण पुरुषार्थ दिखाकर सेठ पूनमचन्द अनविधे मोती और लाल लाये हैं, इसलिए भी उनका अभिनन्दन हमें करना चाहिए। अतः कल सवेरे आप उन्हें निमन्त्रण दे आइये।"

राजा का मनोभाव चतुर मन्त्री ताड़ गया। बहुत पहले से ही वह जानता था कि राजा सेठ पूनमचन्द को मिटाकर

उनकी पत्नियों को हथियाना चाहता है। इस भेद से उ[illegible]
पूनमचन्द सेठ रूपी पतंगसिंह को भी अवगत करा दिया था
अतः अब भी वह रात में ही पतंगसिंह के यहाँ पहुँचा [illegible]
राजा के निमन्त्रण की बात बताकर कहा—

"सेठजी ! अब आपको पूरी तरह से सावधान रह[illegible]
है। राजा दुर्बुद्धि कालू के चक्कर में फँसा है और उ[illegible]
इशारों पर नाच रहा है। अब तो विप्र अधोमुख शर्मा भ[illegible]
राजा के पास आता-जाता है। ये तीनों ही आपके पी[illegible]
पड़े हैं।"

पतंगसिंह बोला—

"मन्त्रिवर ! आप मेरे सच्चे हितैषी हैं। वैसे मैं राज[illegible]
का षड्यन्त्र अब भी समाप्त कर सकता हूँ। अपनी पत्नि[illegible]
को लेकर किसी अन्य नगर में भी जाकर रह सकता हूँ।
लेकिन यह देखने की इच्छा मुझे रोक रही है कि रा[illegible]
कितने पानी में है। अब जब लड़ाई छिड़ ही गई है तो [illegible]
अन्त तक पहुँचाना है। मेरे और राजा के बीच धर्म-अ[illegible]
अथवा सत्-असत् की लड़ाई है। जगत् के सामने भी [illegible]
आदर्श रखना है कि अन्त में जीत सत् की होती है। [illegible]
ओर राजा वज्रनाभ, कालू और अधोमुख शर्मा हैं दूसरी ओर
मैं, मेरी पतिव्रता पत्नियाँ तथा आपका सत्परामर्श है। [illegible]
देखना कि एक दिन राजा अपने दाँव रूपी सभी तीर [illegible]
[illegible]।"

मैं गुप्त रूप से आपके पास आया हूँ। सवेरे राजा की जान-कारी मे आपको निमन्त्रण देने आऊँगा।"

पतगसिह बोला—

"दिखावे के लिए आप राजाज्ञा का पालन अवश्य कीजिए। लेकिन मैं स्वयं ही राजा को अपने यहाँ भोज का निमन्त्रण दूंगा। वह मुझे अपना वैभव दिखाकर डराना चाहता है। लेकिन मैं भी ।

अन्तिम वात कहते-कहते पतगसिह रुक गया। उसके मन मे यह वात आई थी कि मैं भी राजपुरुष हूँ। मेरे पिता जितशत्रु भी कचनपुर के राजा है। लेकिन पतगसिह को ध्यान आया कि अभी अपना भेद प्रकट नही करना है। अभी तो मैं सेठ ही वना रहना चाहता हूँ। मेरी पत्नियां तक नही जानती कि मैं राजपुत्र हूं। यही सोच पतंगसिह ने आगे की वात नही कही। मन्त्री अमितवाहन ने भी विशेष ध्यान नही दिया और उठते-उठते कहा—

"जैसा आप ठीक समझे, कीजिए। आप स्वय पुण्यो के धनी और धीर-वीर है। एक दिन पापी राजा अवश्य मुंह की खायेगा।"

यह कहकर मत्री अपने आवास पर चला गया। सवेरा हुआ। दूसरा दिन आया। पतगसिह नित्य समय से कुछ पहले राजसभा मे पहुँचा। राजा वोले—

"सेठजी! तुम आ ही गये, वैसे मैं महामात्य को आपके पास भेज रहा था। मेरी इच्छा आपको प्रीतिभोज देने की

है। निमन्त्रण स्वीकार करो।"

पतंगसिंह ने पूछा—

"राजन् ! क्या राजकन्या फूलकुमारी का जन्मदिन मनाया जायगा ?"

"नही सेठ।" राजा बोला—"अब वह बड़ी हो गई है। पन्द्रह वर्ष तक उसका जन्म दिन मनाया। अब तो उसका विवाह ही कर देना है। जन्मदिन क्या मनाना ? मैं तो वैसे ही आपके स्वागत मे आपको भोज देना चाहता था।"

पतंगसिंह बोला—

"राजन् ! यदि सेवक के घर स्वामी आये तो सेवक धन्य हो जाता है। यदि आप ही मेरे ऊपर अनुग्रह करें तो मैं धन्य हो जाऊँगा।"

इस प्रस्ताव से राजा को प्रसन्नता ही हुई। बोला राजा—

"एक ही बात है। मुख्य उद्देश्य तो परस्पर प्रीतिवर्द्धन है। कहीं भी खायें, हम साथ-साथ खायें।"

बस फिर राजा वज्रनाभ ने पतंगसिंह का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। सभी सभासद, सचिव और अमात्यों सहित राजा को भोज देना बड़ा काम था। इस बड़े काम की तैयारी के लिए पतंगसिंह को कम-से-कम आठ दिनों की आवश्यकता थी। सो उसने नौवाँ दिन निश्चित किया। पतंगसिंह सभा से उठकर अपने आवास पर गया और अपनी पत्नियों के सम्मुख पूरी बात रखी। चिन्तित होकर सुमारी

ने कहा—

"नाथ ! यह तो अच्छा नहीं किया आपने। कामी राजा यदि आपकी पत्नियो को देखेगा तो उसकी वासना और भी अधिक भड़क उठेगी। यह तो आप वही हाल कर रहे है कि चोर को अपने घर वुलाकर दीपक लेकर उसे यह दिखायें कि कहाँ क्या रखा है।"

पतगसिंह ने विनोद करते हुए मुक्तावती को छेड़ा—

"तो तुम अपूर्व सुन्दरी वनी ही क्यो ? राजा यह तो देखे कि मेरे घर मे तीन-तीन रति है, जवकि कामदेव तो एक ही है।"

लीलावती वोली—

"आर्यपुत्र ! यह समय विनोद का नही है। अव जो हो गया, सो तो हो ही गया। अव तो विगडी वात वनानी है। आप आठ देशो के देशाचार (फैशन) अथवा भूषाचार के पहनावे का प्रवन्ध करे और विविध पहनावो के अनुरूप ही आभूषणो की व्यवस्था करे। फिर हम तीनो वात सम्हाल लेंगी। राजा स्वय चक्कर मे पड जायगा, कालू और अधोमुख शर्मा भी मुँह की खायेंगे।"

पतगसिंह प्रवन्ध मे जुट गया। राजा को दिये जाने वाले भोज का दिन भी आ गया। यह दिन चैत्र सुदि पंचमी का दिन था। एक वड़े कक्ष मे दावत का आयोजन था। पारसीक कालीन के आसनो पर आगन्तुक अतिथि वैठे। वीच मे राजा वज्रनाभ था। सभासद, सचिव तथा महामात्य अमित

वाहन सहित बीस थे। कालू नाई और अधोमुख शर्मा भी राजा के आत्मीय बनकर आये थे। सोने के थाल और सोने की ही कटोरियाँ। भाँति-भाँति के सुस्वादु व्यंजन परोसे गये।

जिस कक्ष में भोज का प्रबन्ध था, वह आजकल की तरह एक बड़ा हाल था, जिसमे आठ बडे भीतरी द्वार थे, जो भवन के भिन्न-भिन्न आठ कक्षों मे जाते थे। इन्ही मे से पतंगसिह की पत्नियाँ निकलकर आतीं और भोजन परोस जाती। पहले एक कश्मीर देश की वेशभूषा मे आई और मिष्टान्न परोस गई। फिर दूसरी पांचाल देश के भूपाचार के अनुरूप परिधान पहनकर आई तो पायस परोस गई। गुर्जर देश के वेश मे एक कुछ और परोस गई। मालव, कलिंग, कोसल, यवन आदि के आठ वेशो मे आठ रानियो ने राजा को भोजन परोसा। राजा तो सचमुच चकरा गया। सोचने लगा 'कालू तो कहता था कि सेठ पूनमचन्द के दो है, ये तो आठ निकली। आठ देशो की सुन्दरियाँ सेठ के घर मे है।' कालू और अधोमुख शर्मा भी हैरान थे। सबकी सुध-बुध विसर गई थी। भोजन मे उनका मन नही लगा। जैसे-तैसे सबका साथ दिया। पर मन्त्री आदि ने रुचिपूर्वक खाया।

यह सब लीलावती की लीला थी। चार वार वेश बदल कर तो उस अकेली ने चार देशो की रमणियो का भ्रम फैलाया। दो वेश मुक्तावती ने बदले थे और दो वेशों में रत्नमजरी ने राजा को सोठ और रायता परोसा था। भोज समाप्त हुआ। राजा सबके साथ राजभवन लौटा और सा...

तथा अधोमुख शर्मा को अपने निजी कक्ष के एकान्त मे ले जाकर बोला—

"तुम लोग तो जैसे कही दूसरे जगत् मे रहते हो। सेठ के आठ है आठ।"

कालू बोला—

"स्वामी ! ये छह और न जाने कहाँ से आ गई ? मुझे तो दो की ही जानकारी थी।"

अधोमुख ने कहा—

"राजन् ! यह तो और भी अच्छा है। अब आठो ही आपके अन्त पुर की शोभा बनेगी।"

राजा ने कुढ कर कहा—

"क्या खाक शोभा बनेगी ? जब तक पूनमचन्द जैसा कांटा दूर नही होगा, तब तक कुछ नही होगा। अभी तक की आप दोनो की सब युक्तियां विफल हुई। अब यह कैसे मिटेगा ?"

अधोमुख बोला—

"राजन् ! अब दो चीजे इस सेठ से और मँगाइए। पहले ज्योतिनग हीरा (कोहनूर हीरा) मँगाइए। इसे ज्योति का पर्वत भी कहते है। यह हीरा मात्र सुना गया है, देखा किसी ने नही है। इतने बडे आकार का हीरा लाने मे यदि यह सफल भी हो गया तो फिर इनसे ऐरावत हाथी मँगवाइए। ऐरावत हाथी कदलीवन मे मिलेगा और वहां से यह जीवित नही लौट सकता।"

राजा ने पूछा—

"लेकिन ऐरावत हाथी तो इन्द्र का हाथी है और स्वर्ग मे ही मिलता है। कदलीवन में कहाँ से आया ?"

अधोमुख ने बताया—

"राजन् ! कदलीवन में सात हजार हाथियो का राजा ऐरावत रहता है। यह धरती का ऐरावत कहलाता है। ये सभी हाथी मानवभक्षी है। यहाँ कोई मनुष्य पहुँच ही नही पाता। मनुष्य को देखते ही ये खूंखार हाथी नष्ट कर डालते हैं।"

"ठीक है ये दो प्रयोग करके भी देखूंगा।" राजा ने कहा—"यदि इन दोनो मे भी यह बच गया तो क्या होगा ?"

अधोमुख बोला—

"राजन् ! हमारे पास युक्तियो की कमी नही। इनसे भी भयंकर युक्तियां है। आप विश्वास करे और एक के बाद दूसरे षड्यन्त्र मे सेठ को फँसाते रहे। किसी न किसी षड्यन्त्र में यह अवश्य मारा जायगा।"

यह दिन षड्यन्त्रो की चर्चा मे बीता। दूसरे दिन राजा ने पतंगसिह से ज्योतिनग हीरा लाने को कहा। पतंगसिह ने लाना स्वीकार किया और एक लाख स्वर्णमुद्रा प्रतिदिन के हिसाब से तीन महीने की अवधि की नब्बे लाख स्वर्णमुद्राएं स्वीकार कराई। पतंगसिह ने अपनी पत्नियों के सामने ज्योतिनग हीरा की बात रखी तो मुक्तावती बोली—

"स्वामी ! विद्याधर लोक मे मेरी एक बहन हीरावती रहती है। आप उससे हीरा ले आइये।"

लीलावती बोली—

"स्वामी ! हीरा ही क्यो हीरावती को भी ले आइए। मुनिवाणी के अनुसार उसे आपकी पत्नी बनने का समय भी आ ही गया है।"

बस, पतगसिह उडनकम्बल पर बैठ कर विद्याधर लोक पहुँचा। मुक्तावती और लीलावती का सयुक्त पत्र उसने हीरावती को दिया। वह भी पतगसिह की प्रतीक्षा कर रही थी। यहाँ दोनो का गान्धर्वविवाह हुआ और उनके रत्न और ज्योतिनग हीरे के साथ ही हीरावती को लेकर पतगसिह पोतनपुर आ गया। राजा को उक्त हीरा मिल गया और फिर उसने तुरन्त ही ऐरावत हाथी को मँगाने की बात भी कह दी। इस बार पतगसिह ने चार महीने की अवधि मांगी।

ऐरावत हाथी के सान्निध्य मे लीलावती और मुक्तावती की बहन गजवती रहती थी। उसे भी पतगसिह की पत्नी बनना था और इस काम मे राजा वज्रनाभ का षड्यत्र वहाना बन रहा था। पतंगसिह ने गजवती के नाम लीलावती और मुक्तावती का पत्र लिया और उडनकम्बल को आदेश दिया कि कदलीवन पहुँचा दो।

कदलीवन पहुँच गया पतंगसिह। बडा भयकर वन था यह। कदली वृक्षों के आधिक्य के कारण यह वन कदलीवन कहलाता था। वैसे इसमे सभी तरह के वृक्ष थे। वन इतना सघन था कि दिन मे घोर अधकार रहता था। चलते-फिरते

पहाड़ जैसे सात हजार हाथी इस वन मे रहते थे और इनका राजा था ऐरावत, जो दर्शनीय और सामान्य हाथियो से कुछ भिन्न था। दोनो ओर निकले चार-चार उसके आठ दाँत बाहर निकले रहते थे। दांतो जैसा सफेद ही उसकी काया का रंग था। इस विशिष्ट हाथी को पकडपाना तो बहुत दूर की बात थी, जबकि अन्य सात हजार हाथियो मे से कोई भी मनुष्य मात्र को जिन्दा नही छोडता था। लेकिन पतंगसिंह को तो पहले गजवती तक पहुँचना था। इसके लिए उसने पहले तो छाल की टोपी पहनी और अदृश्य होकर यथास्थान पहुँच गया।

कदली मण्डल के नीचे एक सुवर्ण शय्या पर गजवती बैठी थी। चार हाथी उसकी सेवा मे खडे थे। दो सूंड से चँवर ढोर रहे थे। दो पहरे पर खडे थे। ऐरावत कहीं विचरण करने गया था। पतंगसिंह ने अदृश्यरूप मे ही अपने तन पर केले के पत्ते लपेटे। लम्बाई मे सिर से ऊँचे पत्ते करके पत्ते इस ढंग से बाँधे कि वह एक कदली वृक्ष-सा लगने लगा। टोपी उतार कर पतगसिंह गजवती के पास ही खड़ा हो गया। हाथियो ने उसे एक कदली वृक्ष ही समझा, वे देखकर भी नही देख पाये।

अवसर देख पतगसिंह ने रेशम का टुकड़ा गजवती के सामने फेंक दिया। गजवती उठाकर पढने लगी। हर्ष से रोमाचित हो गई गजकन्या। चिल्लाई—

'मेरी बहनो का पत्र लेकर कौन आया है? क्या कोई

पक्षी ही लेकर आ गया ? पर इसमे तो लिखा है कि····।"

तभी पतंगसिह उसके एकदम पास पहुँच गया। गजवती ने हर्षावेग मे पतगसिह पर लगे कदली पत्र नोचकर फेंक डाले और शय्या से खडी होकर वोली—

"आप यहाँ तो विराजें। मैं तो आपकी दासी हूँ। मेरे साथ पहले गाधर्व-विवाह करे, तव मैं भी आपके साथ चलूंगी।"

पतंगसिह बोला—

"लेकिन आपके पिता गजराज ऐरावत की अनुमति के बिना विवाह कैसे होगा ?"

गजवती बोली—

"उन्होने विवाह मेरी इच्छा पर छोड दिया है। उनके लौटने का भरोसा नही, कितने दिन मे लौटे। उन्होने मुझसे कह रखा है कि मेरी अनुपस्थिति मे भी जब तेरी इच्छा हो, जो पुरुष यहाँ आये, उसके साथ विवाह कर लेना। दैव कृपा से आप यहाँ आ गए हैं। दूसरे, विना विवाह के तो आप पर-पुरुष होगे और पर-पुरुष के साथ मैं कैसे रहूँगी ?"

विवाह में क्या देर थी ? दोनो ने एक दूसरे के कठ मे वर मालाये डाल दी। विवाह हो गया। फिर गजवती ने हाथियो को आज्ञा दी कि मेरे पालक पिता ऐरावत को ढूंढ कर लाओ। हाथी ऐरावत को ढूंढने गए। गजवती और पतगसिह पति-पत्नी की तरह आनन्द से रहने लगे। दोनो हाथी पर बैठकर सरोवर मे जलक्रीड़ा करते थे। वनफल

खाते और वन मे ही आनन्द मनाते। पन्द्रहवें दिन ऐरावत आया। कदलीवन बहुत विस्तृत था। इसलिए इतना समय लगा। गजवती ने अपने पिता गजराज को सब बातें बताई। ऐरावत ने पतगसिंह को दहेज में बहुत-से गजमुक्ता दिये और पूर्व निश्चय के अनुसार उसके साथ जाने को तैयार हुआ। ऐरावत पर पतंगसिंह और गजवती बैठे। दो हजार हाथी भी साथ लिये। इस प्रकार गजराज और गजदल के साथ पतंगसिंह गजवती को लेकर अडतीस दिन मे पोतनपुर पहुँच गया।

पतंगसिंह ने अलभ्य-दुर्लभ ऐरावत राजा वज्रनाभ को देकर उसे हर्ष, विस्मय और शोक के सागर मे डुबो दिया। अब उसकी सब आशाओ पर पानी फिर गया। हर्ष था कि उसकी गजशाला मे ऐरावत सहित दो हजार हाथी आ गए। विस्मय पतंगसिंह का जीवित लौट आना और अनहोना काम करके दिखा देना। शोक इसका था कि यह मरा अब भी नही तो अब कैसे मरेगा। फिर भी उसने आशा नहीं छोडी, क्योकि कालू और अधोमुख पर उसे बहुत भरोसा था। उनके षड्यन्त्र से पूनमचन्द रूपी पतंगसिंह नही मरा तो उसने चार दुर्लभ अनमोल वस्तुएँ तो उसे दे ही दी—अनविंध मुक्ता, लाल और नगज्योति हीरा तथा ऐरावत हाथी।

जब राजा वज्रनाभ ने अधोमुख शर्मा और कालू से पतंगसिंह के न मरने की बात कही तो अधोमुख बोला—

"राजन्! अभी तक यह इसलिए जीवित रहा है

कि इसके द्वारा आपके भाग्य मे ये चारो चीजे मिलने को लिखी थी। सब कुछ आपको देने के बाद अन्त मे यह मर कर अपनी पत्नियो को भी आपको दे ही देगा। इस बार मैं ऐसा दांव चलाऊँगा कि यह निश्चित ही यमलोक पहुँचेगा।"

राजा ने अधोमुख को वक्ष से लगा लिया और बोला—

"मैं भी आशा का अंचल नही छोड़ रहा हूँ। चारो बार यह इसीलिए बचा कि मेरे भाग्य मे ये चीजें थी लेकिन मैं तुम दोनो के भरोसे ही जीवित हूँ। अब मुझे कुछ नही चाहिए। अब कोई अलभ्य-दुर्लभ वस्तु इससे नही मँगानी, बल्कि जैसे बने वैसे इस बार तो मिटा ही देना है।"

इस बार कालू बोला—

"स्वामी! इस बार तो हम दोनो इसे सीधे यमलोक ही भेजेंगे। आप निश्चित होकर इसके भवन पर और इसकी पत्नियो पर अधिकार कर सकते है।"

"मैं भी अपने वचन से नही टलूँगा।" राजा बोला—"कालू, तुम्हे तो मैं निश्चय ही महामन्त्री बनाऊँगा, क्योकि अमितवाहन सेठ का पक्ष लेता है। मुझे समझा रहा था कि पूनमचन्द जैसे पुण्यात्मा सेठ को मत सताओ। मैंने उसे फटकार दिया है। सेठ के बाद महामत्री अमितवाहन से ही निवटना है।....और विप्र अधोमुख तो मेरे राजपुरोहित होंगे ही।"

आज तीनो बहुत प्रसन्न थे। इधर गजवती अपनी बहनो से मिली। मुक्तावती, लीलावती, हीरावती और गजवती—चारो बहनें जैसे एक ही तरु की लताएँ हो गईं। पाँचवी

रत्नमंजरी थी। राजा की सब चालो को काटता हुआ पतगसिह—रत्नमंजरी के लिए ऐडू और पोतनपुरवासियो के लिए सेठ पूनमचन्द था। उसके दिन बड़े सुख से बीत रहे थे।

× × ×

कर्मों का फल भोगने के लिए कोई भी स्वतंत्र नहीं है। पूर्व कर्मों के फल सबको भोगने पड़ते है। लेकिन कर्म करने मे सब स्वतंत्र हैं। सभी के सामने यह स्पष्ट है कि बुरे कर्म का फल भी बुरा ही होता है। राजा वज्रनाभ, कालू और अधोमुख शर्मा जान-बूझ कर पाप की ओर प्रवृत्त थे। विश्व मे पर-दारा भोग की इच्छा मात्र से हजारो मिट गए। □

8

पोतनपुर के राजा वज्रनाभ का भवन वहुत ही भव्य और दर्शनीय था। दीवारें रत्नजटित थी। उसकी पटरानी इन्दुमती बहुत सुन्दर थी। इसके साथ ही वह रूप-गर्विता भी थी। उसके एक ही पुत्री थी, नाम था फूलकुमारी। विद्यापारगता और विवाह योग्य थी।

रानी इन्दुमती के पास सुभाषी नाम का एक शुक था। यह शुक अवधिज्ञान का धारक, ज्ञानी और मनुष्यो की-सी वुद्धिवाला था और मानववाणी मे ही बोलता था। एक दिन इन्दुमती सजधज कर दर्पण के सामने आई। पतंगसिंह द्वारा दिये गए मुक्ता, लाल और हीरा के हार उसने वनवाये थे और उन्हे पहनकर वह स्वय ही अपने रूप पर रीझ उठी। दर्पण के सामने से हटी इन्दुमती तो सुभाषी शुक पर उसकी दृष्टि जा टिकी। अलिन्द मे कोई नही था, इसलिए रानी ने शुक से ही पूछा—

"बोल रे सुभाषी बोल! मुझे देखकर वता कि मुझसे सुन्दर भी कोई है?"

सुभाषी बोली—

"अपने रूप का गर्व मत करो रानी! तुम्हारे पोतनपुर मे ही ऐसी सुन्दरियाँ है कि उनके सामने तुम कुछ भी नही।"

"अरे अभागे, तेरा इतना साहस ?" रानी ने लपककर तोते को पकड़ लिया और बोली—"मेरे सामने ही मेरी निन्दा करता है ? अब मैं तेरी गर्दन मरोड दूंगी।"

डबडबाई आंखो से तोते ने कहा—

"रानी ! सत्य बहुत कड़वा होता है। सुभाषी होते हुए भी मैं कडवा सत्य बोल गया। इसलिए तुम मार भी दो तो कोई बात नही, पर अगर छोड़ दोगी तो एक दिन मैं तुम्हें मरणासन्न संकट से मुक्त करूंगा।"

रानी का हाथ ढीला पड़ा। उत्सुक होकर बोली—

"तू मेरी क्या सहायता करेगा ? ऐसा मुझ पर क्या संकट आ सकता है कि मेरे प्राणों पर आ पडे ?"

सुभाषी बोला—

"रानी छह महीने बाद तुम पर बहुत बड़ा संकट आयेगा। तब मैं ही तुम्हे बचाऊँगा। मेरे कथन में क्या सचाई है, यह तुम्हे छह महीने बाद ही पता चलेगा।"

रानी इन्दुमती मन-ही-मन डरी कि कहीं इस शुक की बात सच ही न हो। फिर सोचा, यदि इसका कथन सच होगा तो दोनो तरह से ही होगा, यदि संकट आने वाली बात सच होगी तो इसके द्वारा मेरे प्राण भी बच जायेंगे। एक निश्चय कर रानी बोली—

"सुभाषी ! मैं तुझे जीवित छोड़ती हूँ। पर पिंजड़े मे रखूंगी। यदि तूने मुझे झांसा देकर ही प्राण बचाये हैं तो मैं तेरी गर्दन छह महीने बाद ही मरोड़ दूंगी।"

बस फिर रानी इन्दुमती ने सोने के पिंजडे मे सुभाषी नाम वाले शुक को बन्द कर दिया। इधर राजा वज्रनाभ के सामने कालू नाई और अधोमुख शर्मा ने पतगसिंह को मारने की एक नई और अद्भुत योजना रखी। अधोमुख ने कहा—

"राजन् ! असंभव और दुर्लभ काम करके सेठ पूनमचन्द अब तक लौट आया है। पर अब उसे सीधा यमपुर ही भेजना है। उससे कहे कि वह यमराज के पास जाकर आपका निमन्त्रण उन्हे दे आए। साथ ही आपके पूर्वजो को भी निमन्त्रण दे आये। आप राजकुमारी फूलकुमारी के विवाह का बहाना बनाइए।"

राजा भी इस प्रस्ताव से पुलकित हो गया। बोला—

"ठीक है ! ऐसा ही करूंगा। वह बनता भी बहुत साहसी है। उसके वश मे तो कोई वेताल भी है। अब कहूंगा कि मेरी निमन्त्रण पत्रिका पहुँचा यमराज के पास। देखें क्या बहाना बनाता है।"

"अगर बहाना बनाया तो आप क्या करेंगे ?" अधोमुख ने पूछा। राजा बोला—

"यदि बहाना ही करना होता तो अब तक कर न देता। इसका भी एक कारण है। वह मेरा हर काम करने के लिए वचनबद्ध है। तो आज मैं तुम्हे वह रहस्य भी बता ही दूं। एक वर्ष पहले उसने अपने वेताल से हार, मुकुट और कङ्गन—मेरी ये तीन चीजे मँगवा ली थी। इनके बारे मे तो सभी जानते है। मैं तो उसे चोर ही समझता था।

वेतालशक्ति का पता चला तो उससे मैत्री भी कर ली। उसे सभा मे सम्मानित आसन दिया। इसके बदले उसने मुझे वचन दिया था कि अपने वेताल से वह मेरा हर कार्य करायेगा। मुझे तो कोई काम कराना ही नही था। काम हो क्या था मेरा ? लेकिन जब उसकी पत्नियो के सौन्दर्य के बारे मे तुमने बताया तो उसे मिटाने वाले काम भी तुमने बता दिये। सभी काम उसने कर डाले। लेकिन इस काम को या तो वह करेगा नही या नगर छोड़कर भाग जायेगा। अगर करेगा तो यमलोक ही जायेगा।"

वस्तुतः पतगसिंह एक झूठ बोलने के कारण राजा के चक्कर मे फँस गया था। अपना रोब जमाने के लिए ही उसने वेताल की बात कही थी। पर उसके वश मे कोई वेताल नहीं था। अपने इसी झूठ को छिपाने के लिए उसे राजा की हर बात माननी पड़ती थी। इन्कार तो कर नही सकता था पर एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रतिदिन के हिसाब से पारिश्रमिक लेता था। उसका भाग्य साथ दे रहा था, उसने सभी दुर्लभ-असभव कार्य कर डाले थे और अपने लिए विद्याधर सुता पत्नियाँ भी प्राप्त कर ली थी।

एक दिन राजा ने बडे स्वाभाविक ढग से पतगसिंह के सामने अपनी बात रखी। उसने कहा—

"सेठ पूनमचन्द ! अब मैं अपनी बेटी फूलकुमारी का विवाह करना चाहता हूँ। भाग्य सयोग से तुम यहाँ हो। अब मैंने यह निश्चय किया है कि तुम जैसे अपूर्व साहसी का

अमानवीय कार्य करने वाले व्यक्ति का सहयोग लूं और ऐसा विवाह करूं कि जो संसार के लिए एक उदाहरण बन जाए।

"सेठजी! तुम राजकुमारी के विवाह की निमन्त्रण पत्रिका यमराज के पास पहुंचा दो। मेरे पिता, पितामह तथा प्रपितामह भी यमलोक मे होगे। उन्हे भी कहना। यद्यपि यह काम ऐसा है कि आज तक सुना भी नही गया और न भविष्य मे ही कोई ऐसा कर सकेगा। पर तुम तो करोगे ही। बोलो, कब जाओगे।"

इस अद्भुत प्रस्ताव को सुनकर तो पतगसिह भी चकरा गया। मन की घबराहट छिपाकर बोला—

"कोई भी काम न करने का तो प्रश्न ही नही है, अब तक सभी काम किये ही है। यह भी करूंगा। लेकिन इतना तो आप जानते ही है कि यमलोक इस भौतिक शरीर से नही पहुंचा जा सकता। वहां तो सूक्ष्म शरीर मे ही पहुंचा जायगा और इसके... ।"

बीच मे ही राजा बोला—

"इसके लिए परकाया-प्रवेश विद्या का जानना अनिवार्य है। इसे तो तुम जानते ही होगे। अपना स्थूल शरीर यहीं छोड जाना और यमराज को पाती देकर आ जाना।"

"यह सब मेरे ऊपर छोड़ो। मैं यमलोक भी अवश्य जाऊंगा। छह महीने मे अवश्य लौट आऊंगा। साथ ही पूर्ववत वेतन भी लूंगा।"

"वेतन की तो तुम बात ही मत कहो।" राजा बोला—

"वह तो पूर्व निश्चित ही है । तुम जाने की तैयारी करो।"

पतगसिंह बोला—

"आप नगर के बाहर चिता तैयार कराइए। मैं सबके सामने अपने इस शरीर को भस्म करके सीधा यमपुर जाऊँगा और नया शरीर धारण करके लौटूंगा।"

यह कह पतंगसिंह अपने आवास पर पहुँचा और पत्नियों को यह नई समस्या बताई। लीलावती, मुक्तावती, गजवती और हीरावती चारो ही बोली—

"नाथ ! इस काम में तो हम भी आपकी कोई सहायता नही कर सकती। आपसे हमने पहले ही कहा था कि इस नगर को ही छोड दो। आपने राजा को अच्छा वचन दिया। उसने आपकी वचनबद्धता का ऐसा अनुचित लाभ उठाया कि आपको यमलोक भेज रहा है। यमलोक से कौन लौटा है, जो आप लौट आयेंगे ? आप अपना वचन तोड़ दें और यहाँ से अन्यत्र चलें।"

पतगसिंह बोला—

"प्रियाओ ! मारने वाला तो कोई और ही है। वचन छोड़ने से अच्छा तो मेरा मर जाना ही है। तुम अपने मनुष्य पर विश्वास करो। मेरा भाग्यरूपी वेताल मेरी सहायता करेगा। तुम देखती जाओ।"

पतगसिंह ने भी जाने क्या सोच रखा था कि वह मरने के लिए पहुँच गया। नगर के बाहर पहाड-सी ऊँची चिता तैयार थी। पतंगसिंह उसमे बैठा। सबके सामने उसमें आग

प्रज्वलित की गई। धू-धू करके चिता जलने लगी। नगरवासी रोये। उनके आँसुओ का टूटा बाँध भी उस चिता को न बुझा सका। सबके देखते-देखते पतंगसिह चल बसा।

इस दिन ऐसा मातम मना कि किसी के घर चूल्हा नही जला। अपने अच्छे स्वभाव और दानवृत्ति के कारण पतंगसिह जन-जन का प्यारा था। इसलिए सबने मातम मनाया और राजा को भी खूब कोसा। पर कोस कर करते क्या? सब विवश थे बेचारे। इधर राजा ने तो अपने भवन मे उत्सव मनाया। इस उत्सव में कालू और अधोमुख शर्मा—ये दो ही सम्मिलित थे। अब दोनो भविष्य की योजना बनाने लगे। कालू बोला—

"राजन्! अब तो वही हो गया, जो आप चाहते थे। अब मेरा पुरस्कार मुझे मिल जाना चाहिए।"

राजा बोला—

"बिलकुल मिलेगा, निश्चय मिलेगा पर छह महीने बीतने दो। पूनमचन्द ने छह महीने की अवधि माँगी थी।"

अधोमुख बोला—

"राजन्! अब छह महीने बीतने की प्रतीक्षा करना तो अनुचित है। आप कल ही पूनमचन्द सेठ के भवन और उसकी थैलियो पर अधिकार करले। अब पूनमचन्द क्या खाकर लौटेगा? यमलोक से कौन लौटता है? आपकी आँखो के सामने ही वह अभागा सेठ चिता मे भस्म हुआ था।"

राजा बोला—

"मित्रो! तुम्हारे निर्देशो पर ही मुझे चलना है। तुम्हारे ही कारण मुझे इतनी सफलता मिली है। फिर भी जनद्रोह को रोकने के लिए दस-पांच दिन ठहरना होगा। बस तेरह दिन बीतने दो। फिर मैं तुम्हे लेकर ही पूनमचन्द के भवन पर जाऊँगा और उसकी पत्नियो को लेकर आऊँगा। तदनन्तर मैं महोत्सव के साथ तुम्हें मन्त्री और विप्र को राजपुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित करूँगा।"

निश्चय हो गया। राजा, कालू और अधोमुख शर्मा—तीनो ही आज अति प्रसन्न थे। इधर पतंगसिंह अपने गुप्तगृह मे बैठा अपनी प्रियाओं से कह रहा था—

"प्रियाओ! तुम पूछती हो कि जब मैं सबके सामने चिता मे बैठा और सबके सामने चिता भी जली तो मैं बचकर यहां कैसे आ गया। तो अब सुनो कि मैं कैसे आया।

"अपना उडनकम्बल बगल मे दबाये मैं चिता पर बैठा था। एक बगल मे मैंने अपनी टोपी भी छिपा ली थी। ज्यों ही आंच लगी कि टोपी लगाकर मैं अदृश्य हो गया और उस कम्बल पर बैठ कर यहाँ आ गया। सबने यही जाना कि मैं मर गया।

"प्रियाओ! छह महीने तक मैं यही छिपकर—तारा मे ही रहूँगा। इसी अवधि मे राजा अपनी धूर्तता का परिचय देगा। उससे सावधान रहना। छह महीने बाद मैं उसे दरस पोरुष दिखाऊँगा। अब मैं उसकी कोई बात नही मानूंगा और उसका वध करके छोडूंगा। उसकी दुष्ट आज्ञाओं का पालन मैं

कब तक करता रहूँगा ?"

गजवती बोली—

"स्वामी ! राजा को यहाँ आने दो। हम पांचो उसकी ऐसी दुर्गति करेगी कि वह कई जन्म तक नही भूलेगा।"

राजपक्ष और पतग पक्ष—दोनो पक्ष अपने-अपने घर खुशियाँ मना रहे थे। अन्तर इतना था कि एक पक्ष की खुशियाँ भ्रान्ति के कारण थी और दूसरे की खुशियाँ वास्तविक थी।



9

सर्वप्रथम बसन्तपुर के राजा नरसिंह की दुहिता रत्न-मंजरी, फिर विद्याधर सुताएँ क्रमशः मुक्तावती, लीलावती, हीरावती और गजवती। ये पाँचों पतंगसिंह की पत्नियाँ थी। पर पतंगसिंह इनके साथ रहकर भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था। एक के भी साथ उसने सह शय्या शयन नहीं किया। इसके पीछे एक विशेष कारण था। चारों विद्याधर सुताओं के साथ उसका गांधर्व विवाह हो चुका था, पर रत्न-मन्जरी अभी कुँआरी थी। रत्नमंजरी पतंगसिंह को विप्र मदन अग्निहोत्री समझ कर उसके साथ रात मे आई थी। जब भेद खुल गया तो वह बहुत पछताई। नारी को किसी-न-किसी रूप मे पुरुष का सहारा चाहिए, इस ध्रुव मान्यता के कारण रत्नमंजरी पतंगसिंह के साथ रहने तो लगी थी, पर बोलती नहीं थी। पहले तो वह उसे मूर्ख एडू ही समझती रही। अतः घृणा और उपेक्षा के कारण नहीं बोलती थी। लेकिन जब पतंगसिंह पोतनपुर मे सेठ पूनमचन्द के नाम से अपनी कीर्ति बिखेरने लगा तो वह रोष और मान के कारण नहीं बोलती थी। अब पतंगसिंह पहली बार मुक्तावती को लाया तो रत्न-मंजरी का हृदय डोल गया। उसने आत्मसमर्पण भी किया और एक-दो बार पतंगसिंह से बोली भी, पर पतंगसिंह ने

नही बोला। जब तीन और आ गयी तो पतगसिंह इन्ही चारो मे परामर्श करता, बातें करता पर रत्नमंजरी से नही बोलता था। यह सब रत्नमन्जरी को खलता तो था। पर अब उसे अनबोले जीवन की आदत-सी पड गई थी। दोनो हठी थे। एक ओर नारी का मन था दूसरी ओर पुरुष की परुषता थी। इतने पर भी पतगसिंह यह अवश्य सोचता था कि रत्नमन्जरी को छोड़कर शेष चारो के साथ मे सह शय्याशयन करूँगा तो अन्याय होगा। रत्नमन्जरी के साथ कर नही सकता, क्योकि वह सामाजिक विधान और धार्मिक मर्यादा के अन्तर्गत मेरी पत्नी नही है। पोतनपुर मे बसने, सेठ रूप मे यश प्राप्त करने और चार विद्याधर सुताओ के साथ ब्याह करने आदि का बहुत कुछ श्रेय रत्नमन्जरी को ही है। अत. कभी समय आने पर पहले मै रत्नमन्जरी से विवाह करूँगा तब पाँचो को समान रूप से शय्यासुख दूँगा। जब तक इसके साथ विवाह नही कर लूँगा, तब तक इससे बोलूगा नही और विवाह तब होगा, जब पूरी तरह से इनका मान भंग हो जायगा।

आजकल पतगसिंह गुप्तगृह मे छिपकर रह रहा था। सब-की-सब उसके पास नीचे गुप्तगृह मे जाती, बैठती और गपशप करके चली आती। इधर राजा वज्रनाभ से तेरह दिन तो क्या तीन दिन भी नही काटे गए। तीसरे दिन ही उसने पतगसिंह के आवास पर जाने की योजना बनाई। कालू नाई और अधोमुख शर्मा को भी बुला लिया। पतंगसिंह की रत्न-

णियों को मिलने की कल्पना मे वह मनमोदक खाने लगा। बड़ी बेताबी से उसके पल बीत रहे थे। साथ मे थोड़े-से सैनिक भी ले लिये और जब ये तीनों कुचाली चलने लगे तो महामन्त्री अमितवाहन सामने आ गया। उसने निर्भीकता के साथ स्पष्ट शब्दों मे राजा से पूछा—

"राजन् ! जैसा पत्नी का पति पर अधिकार होता है, उसी तरह मन्त्री का राजा पर। उसी अधिकार के नाते मैं आपसे पूछता हूँ कि आप सेठ पूनमचन्द के पीछे उसके घर क्यों जाते हैं।"

राजा ने सरोष नेत्रो से मन्त्री को घूरा और बोला—

"पहले कर्त्तव्य देखो। राजा के काम मे सहयोग करना और सहयोग करने की शक्ति न हो तो तटस्थ रहना, यही मन्त्री का कर्त्तव्य होता है और तुम्हारा भी यही कर्त्तव्य है कि मेरा मार्ग खोटा मत करो। मुझे जाने दो।"

मन्त्री बोला—

"मैं पोतनपुर के राजा का मन्त्री हूँ, वज्रनाभ का नहीं। यदि वज्रनाभ का हूँ तो इसलिए कि वह पोतनपुर के राजा हैं। अतः मैं मन्त्री के नाते आपको ऐसा कोई काम नहीं करने दूँगा, जो राजा को नही करना चाहिए और जो राजा के न्यायपरायण होने, जनरक्षक होने तथा प्रजावत्सल होने के गुणों को नष्ट करता हो। आपको रक्षक ही बने रहना है, भक्षक मैं आपको नही बनने दूँगा।"

"मन्त्रिवर ! मन्त्री राजा का सहायक होता है। राजा

अपने सहायक से कैसे सहायता लेता है, यह देखना सहायक का काम नही। मन्त्री राजा का एक हाथ है। हाथ को अपनी इच्छानुसार चलाने का अधिकार मुझे है और निकम्मे हाथ को अलग कर देने का भी। अत मैं तुम्हे मन्त्री पद से हटाता हूँ। फिर तुम किस अधिकार से मेरे काम मे बाधक बनोगे ? एक अर्से से मैं तुम्हे देख रहा हूँ कि तुम मेरा नमक खाकर प्रतिपक्षी का हित चाहते हो।"

राजा का स्वर कठोर था। कालू और अधोमुख भी मन्त्री को घूर रहे थे। मन्त्री ने कहा—

"राजन् ! राजपरिषद और लोकपरिषद की सहमति से मैं आपका मन्त्री नियुक्त हुआ हूँ और इन्ही की सहमति से आप मुझे हटा सकते है।"

राजा ने निर्णय-सा दिया—

"यदि मुझे विलम्ब न हो रहा होता तो पहले यही करता कि दोनो परिषदो को जोडकर तुम्हे हटाता। अब यह काम लौटकर करूँगा। राज्य मुझे चलाना है। जिसे मैं अपना मन्त्री चाहूँगा, नियमत परिषदे उसी की सिफारिशें करेगी। अत मैं पूर्ण घोषणा करता हूँ कि बुद्धिमानो मे अग्रणी कालू को मैं अपना मन्त्री बनाऊँगा।"

यह कह राजा ने सारथी को सकेत दिया और राजा का रथ पतंगसिंह के आवास की ओर दट चला। मन्त्री अगितवाहन की इतनी शक्ति नही थी, जो
... जाता। शक्ति और अधिकार अलग-अलग हैं।

अनधिकृत कार्य भी कर लिए जाते हैं और शक्ति न होने पर अधिकृत कार्य भी सम्पन्न नहीं हो पाते। आखिर राजा, राजा ही था।

राजा वज्रनाम पहुँच गया पतंगसिंह के यहाँ। प्रहरी को सन्देश दिया कि सेठ पूनमचन्द की पत्नियों से कहो कि राजा उनसे मिलने आये है। लीलावती, मुक्तावती आदि ने प्रहरी को आदेश दे दिया—सम्मान सहित उन्हें [illegible] भवन पर बैठाओ। हम आती है। राजा, कालू और अशोक [illegible] कक्ष मे बैठे। प्रतिहारियाँ जलपान रख गईं। तीनो ने [illegible] मुँह मीठा किया। फिर राजा ने बड़ी व्यग्रता से प्रतिहारी [illegible] कहा—

"अपनी स्वामिनियो से कहो कि वे शीघ्र ही आकर हमे दर्शन दें।"

मुक्तावती आदि छिपे रूप मे खड़ी-खड़ी राजा की बातें सुन रही थी, सो वे स्वत. ही राजा के सामने आकर खड़ी हो गईं। चारो-पाँचो के अमित रूप को देखकर राजा की आँखें झपक गईं। तीनो कुचाली भौचक्के होकर देखने लगे। [illegible] देर तक राजा एकटक इन सुन्दरियो को देखने लगा। फिर बोला राजा—

"सुन्दरियो! तुम पाँच हो। अब तुम मेरे अन्तःपुर की शोभा बनो। एक बनिये के घर मे रहने लायक तुम नहीं हो। और फिर वह तो अब यमपुर पहुँच गया है। अब मेरे साथ चलो। पोतनपुर का राजा ही तुम्हारा दास बनेगा

तैयार हूँ ।"

मुक्तावती बोली—

"राजा ! तुम बड़े भ्रम में हो। शिष्टाचार के नाते और अपने नगर के राजा होने के नाते हमने तुम्हारा स्वागत किया। अब भलाई यही है कि जैसे आये हो, वैसे लौट जाओ।"

कालू बोला—

"स्वेच्छा से चली चलो तो अच्छा है। वरना हमारे राजा शक्ति के बल पर तुम्हे ले जायेंगे। तब क्या करोगी तुम ? अब मरा-मराया तुम्हारा पति तो आने से रहा।"

बस, लीलावती अब ज्यादा नही सुन पाई। ये चारो विद्याधरसुतायें अनेक विद्याओ की धारक थी। लीलावती ने बन्ध-विद्या का स्मरण किया। एक रेशम डोर अपने आप लीलावती के हाथ मे आ गई। यही बन्धनी थी। उसने बन्धनी को आदेश दिया—

"बन्धनी ! इन तीनो पामरो के हाथ-पैर कसकर डाल दो। जो और भी कोई आये तो अपना विस्तार करती जाना और सबको बाँधती जाना।"

बस आदेश की देर थी। तीनो की गठरी बँध गई। अब मुक्तावती ने मारक लकुट का स्मरण करके उसे बुलाया और आदेश दिया—

"मारक ! इन्हे तब तक पीटते रहो, जब तक मैं बन्द न कहूँ।"

अब तो ऐसा दृश्य हो गया कि देखा नहीं जाता था। सबकी सब नीचे गुप्तगृह में पतंगसिंह के पास चली गईं। मारक डंडे की मार से राजा, कालू और अधोमुख हाय-हाय करने लगे। कभी कनपटी सिकती और कभी हाथों की उंगलियां टूटती। खून झलकने लगा। देह सूजने लगी। पतंगसिंह ने अपनी पत्नियों से जब सब वृत्तान्त जाना तो आदेश दिया—

"प्रियाओ ! सज्जन का दण्ड सुधार की सीमा तक पीड़ा देने के लिए होता है। तीनों अब क्षमा मांगकर वचन दें तो छोड़ दो और उनसे कह दो कि मेरी प्रतीक्षा करें।"

मुक्तावती और लीलावती ऊपर आईं। राजा ने रो-रोकर कहा—

"मेरी मां, मेरी बहन ! मैं तुम्हारी शरण हूं। मुझे जीवित छोड़ दो। मैं वचन देता हूं कि अब कभी इधर मुंह भी नहीं करूंगा।"

मुक्तावती ने तीनों को मुक्त कर दिया और कहा—

"राजन् ! छह महीने बाद हमारे पति यमलोक से लौटकर तुम्हारे पास आयेंगे। अब आगे का दण्ड वही तुम्हें देंगे। वे चाहेंगे तो क्षमा भी कर देंगे। अब जाओ और पर-दारा की कभी कल्पना भी मत करना।"

तीनों छोड़ दिये गये। पर उठने लायक शक्ति नहीं रही। राजा के भृत्यों ने उन्हें उठाकर रथों में डाला अपने-अपने घर गये तीनों। तीनों की देह सूज गई थी। रोग

रोम दुखता था। कई दिन तक सिकाई हुई। तेल मर्दन हुआ, तब डेढ महीने मे राजा चलने-फिरने लायक हो पाया। स्वस्थ होते ही राजा ने कालू तथा अधोमुख के पास सन्देश भेजा तो उन्होंने कहलवाया कि अभी हम चलने-फिरने लायक नही है और हमारा मुंह भी अब ऐसा नही रहा, जो आकर आपको दिखायें।

कालू और अधोमुख मन-ही-मन राजा से डरते भी थे कि हमारे सिखावन के कारण राजा पिट गया तो वह उस पिटाई का बदला पुन. हमसे लेगा। इसलिए अभी न जाना ही ठीक है। कुछ दिन मे राजा का क्षोभ निकल जायगा, तब मिलेंगे। इसी तरह पाँच महीने बीत गए तो राजा के विशेष आदेश पर कालू तथा अधोमुख को उसके पास जाना पड़ा।

राजा ने दोनो से कहा—

"साथियो! अब कब तक हार-पर-हार खानी पड़ेगी? इस अपमान का बदला लेना चाहता हूँ। हम तीनो का ही अपमान हुआ है। बोलो, क्या कहते हो।"

कालू बोला—

"स्वामी! हार-जीत का निश्चय अन्तिम बाजी के बाद होता है। अन्त मे जीत हमारी ही होगी। पूनमचन्द तो अब स्वप्न मे भी नही लौट सकता। उसकी पत्नियो मे छह महीने बाद पूनमचन्द के आने की बात कही है। ...ओ। ये कही भागना चाहती है। यह ...ध। उनके भवन पर आपने निगरानी रखी ...ने

बीत ही गये। एक महीने बाद सेना द्वारा पूनमचन्द के भाग को नष्ट-भ्रष्ट करके उसकी पत्नियों को काबू में कर लेना है।"

राजा ने शंका व्यक्त की—

"लेकिन वे तो सब की सब जादूगरनी हैं। उनकी जादू की डोर और जादू के डंडे का कमाल आपने नहीं देखा क्या?"

अब अधोमुख शर्मा ने उत्तर दिया—

"राजन्! लता-वनिता बिना सहारे के कभी नहीं रह सकती। जब वे भी पूनमचन्द की ओर से निराश हो जायेंगी तो आपके विरुद्ध अपने जादू का प्रयोग करेंगी ही क्यों? छः महीने तक तो उन्हें भी पूनमचन्द सेठ के लौटने की झूठी आशा है। दूसरी बात यह है कि जादू का जोर अपने घर पर ही चलता है। यहां आने पर उनके जादू का कोई जोर नहीं चलेगा। हमारे नगर में बड़ी-बड़ी चतुर दूतियां हैं। पूनमचन्द के लौटने की अवधि बीतने के बाद दूतियां अपने कौशल से उन्हें यहां तक ले आयेंगी।"

राजा को भी तसल्ली हो गई। अब वह अपने सुखद भविष्य के लिए निश्चिन्त हो गया। एक महीना भी बीत गया। पदमसिंह को गए छह महीने पूरे हो गये और चार दिन ऊपर बीते। राजा ने अपने कुमार्गी साथियों को बुलाकर कहा—

"अब तो निश्चय ही पूनमचन्द नहीं आ सकता। ...

हो गया वह तो। अब उसकी पत्नियो को लाना होगा। अब तुम लोग यह निर्णय करो कि पहले दूतियाँ भेजी जायें या फिर. .।"

राजा की बात अधूरी ही रह गई कि द्वारपाल ने सन्देश दिया—

"महाराज ! उत्तर कोण के उद्यान का माली श्रीमान् के दर्शन चाहता है।"

"भेजो।"

राजा के आदेश पर द्वारपाल ने माली को भेजा तो माली ने सन्देश दिया—

"श्रीमान् सेठ पूनमचन्दजी यमपुर से लौट आये है और यमदूत के साथ उद्यान मे आपकी प्रतीक्षा कर रहे है।"

"यमदूत के साथ ?"

एक साथ तीन स्वर उठे। ये स्वर राजा, कालू और अधोमुख शर्मा के थे। राजा तो थोडी देर के लिए अपने होश ही खो बैठा। फिर सावधान होकर उसने माली से पूछा—

"तुमने अपनी आँखो से देखा है सेठ पूनमचन्द को ? कहीं भांग तो नही पीली तुमने ? कोई ठग ही तो पूनमचन्द बनकर उद्यान मे नही आ गया ?"

माली ने दृढता से कहा—

"महाराज ! मै सेठ पूनमचन्द को अच्छी तरह जानता हूँ। मैने अपनी आँखो से देखा है, वे ही है। यमराज के दिये हुए दिव्य वस्त्रालंकार धारण किये हुए वे उद्यान मे बैठे है।

यमदूत भी उनके साथ है।"

राजा ने कालू और अधोमुख शर्मा की ओर देखा तो अधोमुख बोला—

"राजन्! हम तीनो की आँखे तो धोखा नही खा सकती। चले, चलकर देखें। यदि वही हुआ तो सम्मान सहित लाना ही होगा।"

"लाना ही होगा।" राजा बोला—"यह तुम कहते हो? मेरी आशाओ का क्या होगा? क्या मेरे सब मनोरथ यो मिट्टी मे मिलेंगे?"

कालू ने राजा को धैर्य बँधाया—

"राजन्! शक्ति को युक्ति से समाप्त किया जाता है। यमपुर से लौट आने वाला पूनमचन्द शक्तिमान तो है ही। लेकिन हमारे पास भी युक्तियो की कमी नही है। कुछ और करेंगे। फिलहाल तो उसे सम्मान से ही लाना होगा, ताकि उसे हमारी नीयत पर सन्देह न हो।"

भारी मन से राजा उठा। स्वागत की तैयारियो का आदेश दिया और रथादि लेकर उद्यान की ओर चल दिया। पतंगसिंह ने मूल्यवान वस्त्रालंकार धारण किये थे और अपने एक भृत्य को यमदूत बनाया था। काला रंग पोत कर उसकी देह तवे के उल्टे पैंदे जैसी काली करदी। उसकी कील-सी मुड़ी हुई मूछे कानो तक लम्बी थी। आँखो के पलक पीले रंग से रंगे थे। कान से ऊँचा दण्ड उसके हाथ में था। घुटने से ऊपर तक बाघम्बर लिपटा था। उसकी

लाल-लाल आँखो को देखकर डर लगता था और सचमुच ही वह कराल काल का दूत लगता था।

राजा आदि उद्यान पहुँच गए। उन्हे अपनी आँखो पर विश्वास करना पडा और अपने भय, शोक तथा आश्चर्य को भी बरबस दबाना पडा। प्रकट मे राजा ने पतगसिह को अभिवादन किया और बोला—

"मुझे आशा थी कि मेरा काम करके तुम अवश्य आओगे। कहो, मेरे पूर्वज कुशल से तो है। यमराज ने मेरा निमत्रण स्वीकार तो कर लिया ?"

पतंगसिह बोला—

"राजन् ! सब बाते मैं सभा मे ही बताऊँगा। यमलोक के अद्भुत समाचार और लोग भी तो सुनें।"

बस फिर राजा धूम-धाम से पतगसिह को राजसभा मे ले गया। सभाभवन छोटा पड़ा तो नगर के बाहर मैदान मे सभा जुडी। यह सभा विशेष सभा थी। जिसने सुना वही दौडा आया। शिशुमतियाँ अपने-अपने शिशुओ को बगल मे दबाये दौडी। बूढे-बूढिया लाठी टेक-टेक कर अच-रज भरी सभा मे आये। यमदूत के साथ पूनमचन्द सेठ का लौट आना अनहोनी बात थी और इस अनहोनी बात को देखते-सुनने पोतनपुर नगर उमड पडा। जब सब जुट गए तो राजा ने पतंगसिह से कहा—

"सेठ पूनमचन्द ! तुम्हारी यमपुरी की यात्रा का वर्णन सुनने के लिए सभी उत्सुक हैं। अब देर मत करो।"

पतंगसिंह ने सुनाना शुरू किया—

"राजन् ! यमपुर की शोभा का वर्णन करने मे तो मैं असमर्थ हूँ। मैं तो मूल बात बताता हूं। यमराज ने जब मुझे देखा तो हर्षित होकर अपनी गोद मे बैठा लिया। मेरे साहस की सराहना करके कहने लगे कि बस तुम्हे अब कही नही जाने दूगा। जैसी तुम्हारी पत्नियाँ पोतनपुर मे है, ऐसी तो तुम्हारी दासियाँ होगी। यहाँ तुम्हे दुर्लभ सुख मिलेगे, पर मैने कहा—नाथ ! मै तो अवश्य जाऊँगा, क्योकि राजा को विश्वास कैसे होगा। वे बोले कि यमपुर आकर कोई लौटता ही नही है। तुम्हे भेजना अनहोनी बात होगी पर चूकि तुम मुझे प्रिय हो सो तुम्हे भेज दूगा। लेकिन छह महीने तक तो रहना ही होगा।"

"राजन् ! यमराज का आग्रह मानकर छह महीने तक मुझे वहाँ रुकना ही पडा। फिर मैंने आपके पूर्वजों की बात उनसे कही तो उन्होने सचिका (फाइल) मे आपके पूर्वजो के नाम देखे। वे कहाँ कहाँ है यह देखकर मुझे उनके पास पहुँचाया गया तो मैंने उन्हे आपकी कन्या के विवाह का निमत्रण दिया। इस पर वे बोले—हमारा वशज वज्रनाभ पाप-पथ पर है, इसलिए हम नही आ सकेंगे। जब मैंने यमराज को आपका स्नेह निमत्रण दिया तो वे बोले कि हम तो कहीं जाते ही नहीं। लेकिन तुम्हारे आग्रह पर हम अपने दूत को भेज देते है। साथ ही शर्त यह होगी कि राजा अपने साथी कालू और अधोमुख शर्मा को उसी रीति से हमारे पास

भेजे, जिस रीति से तुम आये हो ।

"राजन् ! आपकी कन्या के विवाह तक यह यमदूत यमराज का प्रतिनिधि बनकर रहेगा । लेकिन पहले आप कालू और अधोमुख शर्मा को भेजें । नही भेजेंगे तो यह यमदूत जाने क्या कर बैठे ।"

पतगसिह की बातें सुन-सुन कर लोगो के रोंगटे खड़े हो गए । आपस मे सब कानाफूसी करने लगे कि यह तो हमारे सामने ही जलकर भस्म हो गया था, फिर वही देह कैसे पा गया ? यही आश्चर्य राजा को भी था । राजा ने पूछ ही लिया—

"सेठ पूनमचन्द ! तुम तो जलकर भस्म हो गए थे । फिर वही पुन देह कैसे पा गए ?"

पतगसिह बोला—

"यह भी कोई पूछने की बात है ? यहाँ से तो मेरी सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा ही पहुँची थी । वैसा का वैसा नया तन देना क्या यमराज के लिए मुश्किल था ?"

धीरे-धीरे सब लोग जाने लगे । पतगसिह ने राजा से कहा—

"राजन् ! कालू और अधोमुख शर्मा को शीघ्र ही यम-लोक भेजिए ।"

राजा डर तो रहा ही था, यथास्थान ही चिता तैयार हो गयी । जब कालू और अधोमुख से कहा गया तो वे आना-कानी करने लगे । बोले—

"हम क्यो जाएँ यमपुर ? हमारी इच्छा नही
हम नही जायेंगे ।"

"जाओगे कैसे नही ?" राजा बोला—"तुम्हारे प्रस्त
पर मैंने सेठ पूनमचन्द को भेजा था तो अब तुम्हे भी जा
ही पड़ेगा ।"

सच्ची बात राजा के मुंह से निकल ही गई । उसने ब
पूर्वक दोनो कुकर्मियो को जलती चिता मे फिकवा दिया । रा
को उल्टा पडते देर क्या लगती है ? अपने किये का फल का
और अधोमुख शर्मा पा गए । वे तो मर गए पर उनके वंश
आज भी इस जगत् मे है, जो पराई विभूति देखकर जल
हैं । अकारण ही दूसरो का बुरा चाहते है और दूसरो
अनिष्ट करने के लिए अपनी सभी विद्या-बुद्धि दाँव प
लगा देते हैं, वे सब कालू नाई और अधोमुख शर्मा
वशज अर्थात् अनुयायी ही हैं ।

जब चिता की लपटे धीमी पडने लगी तो राजा ने अप
मन मे कहा—अब तो कालू और अधोमुख भी पहुँच ही ग
होगे, यमलोक । फिर ध्यान आया—लेकिन मेरा सहायक तो
अब कोई नही रहा । इस सेठ पूनमचन्द से मैं कैसे निबटूंगा ?
आश्चर्य है, अब भी राजा पतगसिह से निबटने की सोच रह
था । पतगसिह भी उससे निबटना चाहता था । आज उसने
खेल खत्म करने का निश्चय कर लिया था, सो पाँचो शस्त्रो मे
सज्जित होकर आया था और अपनी पत्नियो से मारक लकुट
और बन्धनी भी साथ लाया था । उसने राजा से कहा—

"राजन् ! एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रति दिन के हिसाब से एक करोड अस्सी लाख स्वर्ण मुद्रा आप मुझे तौल दें ।"

इतनी वडी गणना की राशि पहले गिनी नही जाती थी, तौल कर दी जाती थी। एक निश्चित माप के वजन मे एक निश्चिय सख्या की मुद्राएँ होती थी। इसलिए पतगसिह ने तौलने की वात कही। राजा मन-ही-मन खीझा और सोचा—मेरा असली काम न तो हुआ और न होने की आशा है और यह धीरे-धीरे मेरा कोष ही खाली कराये जाता है। अव मैं तो इसे एक फूटी कौडी भी नही दूगा। यह सोच राजा ने कठोर शब्दो मे कहा—

"पूनमचन्द ! तुम वनिये हो और मुझ से ही व्यापार करना चाहते हो। मैं तुम्हे एक कौडी भी नही दूंगा। ज्यादा करोगे तो कारागार मे डलवा दूंगा।"

पतंगसिह का भी क्षात्र तेज जाग उठा। उसने खड्ग खीच लिया और वोला—

"पापी ! मैं तुझे वताता हूँ कि मैं कैसा वनिया हूँ।"

राजा ने अपने सैनिको को आदेश दिया कि इने पकड़-कर वांध लो। पतगसिह ने अपने लकुट और वधनी को आदेश दिया—

"इन्हे तुम रोको और इस राजा को अव मैं ही दूंगा।"

वस मारक लकुट राजा के सैनिको को सीधा करने लगा। लकुट की मार का राजा भुक्तभोगी था, तो रथ से

बैठकर रनिवास की ओर भागा, पतंगसिंह ने ललकारा—

"पापी ! तुझे जादू के लकुट से नही मारूँगा। तुझे तो मैं द्वन्द्व युद्ध में परास्त कर के पछाड़ूंगा । तू कही भी छिप जा, आज तुझे छोड़ूंगा नही ।"

राजा ने इस चुनौती की परवाह नही की और सीधा रानी इन्दुमती के पास पहुँच कर बोला—

"रानी ! मुझे साड़ी और कंचुक दे दे । शायद स्त्री समझकर पूनमचन्द छोड दे मुझे । वरना आज तेरे सुहाग की रक्षा असंभव है। वह आ रहा है। सबको मारता-पछाडता आ रहा है ।"

रानी भी घबरा गई । रोने लगी इन्दुमती । पिजड़े मे बैठा सुभाषी शुक चिल्लाया—

"रानी ! मुझे मुक्त कर । आज मै तेरे सुहाग की रक्षा करूँगा ।"

रानी को शुक का वचन याद आ गया और उसने शुक को मुक्त कर दिया । शुक उड़कर पतगसिह को रोकने चल दिया और मंत्री अमितवाहन राजा के पास आकर बोला—

"अब भी समय है। यदि क्षमा माँग कर सेठ को अपना जामाता बनाना स्वीकार करो तो तुम्हारे प्राण अब भी बच सकते हैं। वरना अपराध तो तुम्हारा वध करने योग्य ही है।"

राजा तो कुछ बोल नही पाया, रानी इन्दुमती ने हाथ जोड़ कर मन्त्री से कहा—

"मन्त्रिवर ! तुम मेरे सुहाग की रक्षा करो। ये कौन

होते हैं विवाह न करने वाले ? फूलकुमारी मेरी भी बेटी है। मैं बनाऊँगी उन्हे अपना जामाता।"

इधर शुक पतंगसिंह के चरणो मे गिर पडा और बोला—

"पहले मुझे मारो! मेरे स्वामी को प्राण-दान दे दो और बदले मे मुझे मार दो।"

तोते की वाणी सुनकर पतगसिंह ठिठक गया, बोला—

"तुम्हे क्यो मारूँ ? तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है ? तुम्हारा राजा तो मेरा अपराधी है।"

"अपराधी को आप जैसे वीर ही क्षमा भी करते है।" आते-आते मन्त्री ने भी यह बात कही और आगे बोला—"मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उसे क्षमा करें देव! आप धर्मवीर और युद्धवीर ही नही, क्षमावीर भी है।"

सज्जनो का क्रोध तो प्रणाम करने मात्र से शान्त हो जाता है। पतगसिंह का क्रोध भी शान्त हो गया। उसने सुभाषी शुक को हाथ मे उठाया। उसे चूमा, पुचकारा। फिर मन्त्री से कहा—

"तुम्हारी बात नही टाल सकता। तुम दोनो ही धन्य हो। एक तिर्यंच रूप मे मानव है और दूसरा मानव रूप मे देव है।"

पतगसिंह ने मारक लकुट को अपने पास वापस बुला लिया। दांतो मे तृण दबाकर राजा वज्रनाभ आया और पतगसिंह से बोला—

"देव ! मैं आपको पहचान नही पाया। मैंने महान अपराध किये है। अपने हितैषी मन्त्री की बात मैंने नही मानी, उसी का फल भोग रहा हूँ मैं। अब आप मेरे अपराध क्षमा करे और मेरी सुलक्षणा कन्या फूलकुमारी का पाणि-ग्रहण करें।"

पतगसिह बोला—

"राजन् ! मैं इस योग्य कहाँ हूँ ? मेरे कुल-गोत्र का भी आपको कुछ पता नही है। मुझे आप अपना जामाता कैसे बनायेगे ?"

राजा बोला—

"देव ! अब कब तक छिपोगे ? आप क्या है, इसे बताने की आवश्यकता नही है। यदि आपने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नही किया तो मैं समझूगा कि आपने मुझे अभी क्षमा नहीं किया है। क्या मुझे अब क्षमा ही नही करेंगे ?"

इतने मे महारानी इन्दुमती भी आ गई। वे बोली—

"मैंने तो आपको अपना जामाता मान ही लिया था, मैं भी आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरी फूलकुमारी का फूल सा हाथ थाम लो।"

पतंगसिह को हाँ कहना पड़ा और फिर अपना भेद खोलते हुए बोला—

"मुझे स्वीकार है राजन् ! आपकी प्रसन्नता के लिए एक रहस्य यह भी बता दू कि सेठ पूनमचन्द मेरा छद्म रूप है। मैं भी क्षत्रिय हूँ। कचनपुर का राजपुत्र हूँ और नाम है,

मेरा पतंगसिंह ।"

"ओ हो हो !" खुशी से उछल पडा राजा वज्रनाभ। बोला—"ओ हो ! मेरी बिटिया के भी भाग्य जाग गए। तुम पतंग हो तो सूर्य भी हो। अब मेरी भी चिन्ता मिट गई। अब यह राज्य भार भी आपको ही सम्हालना है।"

× × ×

फिर तो धूमधाम से पतंगसिंह का विवाह फूलकुमारी के साथ विधि-विधान से सम्पन्न हुआ। उसकी वे नव पत्नियाँ जिनके साथ उसका गान्धर्व विवाह हुआ था, उनकी फिर विधि-विधान से पतगसिह के साथ भाँवरे पडी। रत्नमन्जरी अभी कुँवारी ही रही। पतगसिह का सेठ पूनमचन्द रूप तिरोहित हो गया। अब वह राज जामाता था। पोतनपुर मे अब ऐसे चमका, जैसे मध्याह्न का सूर्य प्रात कालीन सूर्य से अधिक चमकता है। यदि उसका सेठ पूनमचन्द रूप प्रात कालीन सूर्य से लेकर उस पूर्वाह्नकालीन सूर्य का था तो उसका राज जामाता पतगसिह रूप मध्याह्न का सूर्य था।

समय बीत रहा था। पोतनपुर मे रहते हुए पतगसिह को सत्ताइस वर्ष हो गए। छह वर्ष यह राज-जामाता के रूप मे रहा और इक्कीस वर्ष सेठ पूनमचन्द के रूप मे। इसी बीच—सत्ताइसवे वर्ष के अन्त मे एक मुनि [illegible] मे आये तो उनकी देशना सुनकर राजा वज्रनाभ [illegible] गया। उसने राज्यभार पतगसिह को दिया और [illegible] ली। रानी इन्दुमती ने भी पति के [illegible]

साध्वी वनकर दोनो ने विहार किया। अब पतंगसिंह पोतनपुर का यशस्वी राजा था। उसका मंत्री तो वही बुद्धिमान अमितवाहन ही था। एक वर्ष तक शासन व्यवस्था करने के वाद राजा पतगसिंह ने मंत्री अमितवाहन से कहा—

"मन्त्रिवर! पोतनपुर मे रहते हुए मुझे अट्ठाइस वर्ष हो गये। अब मैं अपने देश जाना चाहता हूँ। अतः आप मेरे पीछे शासन चलाये। यथासमय मैं फिर आऊँगा।"

"जैसी आपकी इच्छा" मत्री ने कहा—"मैं तो आपका सेवक हूँ। सो जैसी आज्ञा देंगे, अपनी सेवा मे कोई कसर नही छोड़ूँगा।"

पतगसिंह बोला—

"मन्त्रिवर! सेवक-स्वामी का भाव ले आना तो आपका वडप्पन है। लेकिन याद रखो, जैसे गृहस्थी रूपी गाड़ी के पति-पत्नी दो पहिए हैं, उसी तरह शासन रूपी गाडी के राजा और मंत्री दो पहिये है। यदि आप सेवक ही है तो राज्य के हैं, मेरे नही। हम दोनो ही सेवक है। राजा यदि बड़ा सेवक है तो मत्री छोटा सेवक।"

पुलकित होकर मत्री बोला—

"आप जैसे राजा के शासन मे ही प्रजा सुख की साँस लेती है।"

पतंगसिंह बोला—

"पूर्व राजा वज्रनाभ भी सुशासक ही थे, पर वे अपनी व्यक्तिगत दुर्बलता के कारण ही कालू और अधोमुख शर्मा

जैसे लोगों के चक्कर मे फंस गए। पर अब अणगार बनकर तो वे सबके लिए वन्दनीय बन गए। उन्होने अपना जीवन सार्थक कर लिया।"

इस प्रकार बहुत बाते हुई। पतंगसिह ने अपने प्रस्थान की तैयारी कर ली। चारो प्रकार की असख्य सेना, सेवक, दासियाँ अपार सम्पत्ति और पाँच व्याही तथा एक अनव्याही—छह प्रियाओ के साथ पतगसिह ने पोतनपुर से प्रस्थान किया। शिविर, वितान-तम्बू की सामग्री, धन-सम्पत्ति से भरे छकड़े और ऊँट तथा चतुरग विशाल वाहिनी को देखकर ऐसा लगता था कि कोई चक्रवर्ती दिग्विजय करने जा रहा हो। □

10

वसन्तपुर के वाहर विशाल उद्यान मे पतगसिंह ने पडाव डाला। उसकी सेना ने दूर-दूर तक विखर कर काफी विस्तृत भूभाग को घेर लिया था। जिधर देखो, उधर घोडे ही घोडे और हाथी ही हाथी। ऊँटो और रथो की भी लम्बी-लम्बी पक्तियाँ थी। लम्बे-चौडे वितान के नीचे छह अलग-अलग शिविर-कक्षो मे पतंगसिंह की पत्नियाँ—क्रमश· रत्न-मंजरी, मुक्तावती, लीलावती, हीरावती, गजवती और फूलकुमारी थी। इनमे अन्तिम पाँच विधिवत व्याही पत्नियाँ थी और पहली रत्नमजरी अनव्याही पत्नी थी। रत्नमजरी के पिता राजा नरसिंह के नगर वसन्तपुर के उद्यान मे ही पतगसिंह ने अपना पड़ाव डाला था। उसका शिविर कक्ष छहो पत्नियो के कक्षो से लगा-सटा बीचोवीच था। सेवको और सभासदो के वीच सुवर्णमण्डित सिंहासन पर पतंगसिंह वैठा था और आगे के कार्यक्रम पर विचार कर रहा था। एक निश्चय करने के वाद उसने अपना एक दूत राजा नरसिंह के पास भेजा था। दूत को राजा से क्या कहना है, इसे उसने अच्छी तरह समझा दिया था।

राजा नरसिंह को इतना तो मालूम हो ही गया था कि किसी बडे शक्तिशाली राजा ने अपनी विशाल वाहिनी सहित

मेरे नगर के निकट पडाव डाला है। अनुमान-प्रमाण से इस पडाव का उद्देश्य आक्रमण करना ही राजा नरसिंह ने माना। इस नई समस्या पर वह अपने मन्त्रियो से विचार विमर्श कर रहा था। सभा मे विप्र मार्तण्ड अग्निहोत्री भी थे और उनका पुत्र मदन अग्निहोत्री भी था। राजा ने सभी से पूछा—

"आप लोग विचार करके बतायें कि हमे क्या करना उचित है।"

सेनापति ने कहा—

"राजन् ! उचित यही है कि युद्ध मे उतरा जाय। यद्यपि हमारी सेना कम है, मित्र राजाओ से भी हम तुरन्त सहायता प्राप्त नही कर सकते, लेकिन देशरक्षा का उत्साह हमारे सैनिको के रोम-रोम मे समाया है। यो बैठे-बैठे हार मान लेना उचित नही है।"

राजा ने प्रतिवाद किया—

"सेनापति ! तुमने वही कहा है, जो एक वीर सेनापति को कहना चाहिए। हमे तुम पर गर्व है। लेकिन थोडी सेना के कारण निश्चित हार की सम्भावना देखते हुए युद्ध करना मूर्खता है और साथ ही पाप भी। व्यर्थ ही रक्त सरिता बहाना और सुहागिनो के सिन्दूर को रक्त मे मिलाकर मिट्टी को लाल कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है।

"मेरे सलाहकारो ! कुछ धन देकर युद्ध को टाल देना मै कायरता नही समझता।"

मंत्री ने कहा—

"और यदि आक्रामक राजा धन लेकर भी नही गाना तो ?"

राजा ने दृढ़ता से पूछा—

"तो फिर चूड़ियां हमने भी नही पहनी । अनिवार्य होने पर युद्ध किया ही जायगा ।"

विप्र मार्तण्ड अग्निहोत्री भी बोले—

"इसके लिए हमे आक्रामक राजा के युद्ध-सन्देश की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।"

"प्रतीक्षा उचित नही ।" गृहसचिव बोले—"शिष्टाचार के नाते, जो राजा हमारी नगरसीमा मे टिका हुआ है, चलकर हमे उसका स्वागत करना चाहिए । क्या पता, उसके मन मे अच्छे भाव ही हो मिलने पर उसके मनोभावों का पता भी चल जायगा । पहले से अनुमान लगाना तो अँधेरे मे लक्ष्यवेध करने के समान है ।"

गृहामात्य की बात सभी को पसन्द आई । राजा ने आदेश दिया—

"तो फिर तैयारियां करो । आगन्तुक राजा को हम जाकर सौहार्दभाव से मिलेंगे ।"

इस आदेश के तुरन्त बाद, ज्यो ही राजा उठने को हुआ कि द्वारपाल ने पतंगसिंह के दूत के आने की सूचना दी । राजा ने दूत को बुलवाया । उचित ढंग से अभिवादन कर दूत ने राजा नरसिंह से कहा—

"राजन् ! हमारे राजा पतंगसिंह अकारण ही आपसे युद्ध करना नही चाहते । वे पोतनपुर के यशस्वी राजा है और कचनपुर के राज्य पर अपना अधिकार करने जा रहे हैं । आपसे मधुर सम्बन्ध बनाने की उनकी इच्छा है । अत· आप अपनी कन्या उन्हे देकर उन्हे अपना जामाता बनाये तो वे युद्ध नही करेंगे । वरना युद्ध तो होगा ही ।"

नरसिंह घबरा गया । सभासदो का मुंह देखने लगा । उनका मनोभाव जानकर मंत्री ने दूत से कहा—

"दूत ! हमारे राजा के कोई पुत्री नही है । यदि होती तो वे ऐसे यशस्वी राजा को अवश्य अपना जामाता बनाते । अत. वे अन्य किसी भी ढग से आपके राजा का सम्मान करने को तैयार है ।"

दूत को सब कुछ पतगसिंह ने समझा दिया था । दूत चतुर था और जानता था कि किस तरह बात को प्रस्तुत करने से मेरे स्वामी का हित होगा । अत दूत बोला—

"मन्त्रिवर ! क्षमा करें मेरे राजा पतगसिंह जानते हैं कि आपके राजा नरसिंह के रत्नमजरी नाम की एक पुत्री है । अत· यदि किसी दोष के कारण आपके राजा मेरे स्वामी को अपना जामाता बनाना न चाहे, तो यह बात दूसरी है । पर पुत्री न होने का बहाना तो चलेगा नही ।"

राजा नरसिंह गहरे विस्मय मे डूब गए। सभी को आश्चर्य हुआ, क्योकि पतंगसिंह का दूत राजकन्या का नाम भी

बता रहा था। बहुत देर तक असमंजस में डूबने-उतरने के बाद राजा ने दूत से कहा—

"दूत! हमारे एक पुत्री थी, है नही। उसका नाम भी रत्नमजरी था। पर वह मर चुकी है। अब तुमसे क्या कहूं? हम स्वयं ही तुम्हारे राजा के पास चल रहे है। उन्हे विश्वास दिला देंगे कि राज्यकन्या रत्नमजरी मर चुकी।"

"तो फिर मुझे अनुमति दीजिए।"

यह कहकर दूत पतगसिह के पास पहुँचा। थोडी देर बाद राजा नरसिह भी अपने सचिव-अमात्यो सहित पहुंचा। पतगसिह ने उठकर राजा का स्वागत किया। उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर नरसिह राजा मोहित हो गया और मन ही मन सोचने लगा—'सिह की-सी बैठक वाले इस युवा-तरुण राजा को जामाता बनाना मेरा सौभाग्य होता। पर रत्नमजरी जाने कहाँ खो गई।? चारों ओर उसकी खोज कराई। कहाँ नही ढूंढा रत्ना को? पर मिली ही नही। ले-दे कर वही एक सन्तान थी, सो दैव ने उसे भी ले लिया।' यो अपनी-पुत्री की याद करके राजा नरसिह की आंखो मे टप-टप आंसू गिरने लगे। इस रुलाई का कारण पतगसिह समझ रहा था और इसे दूर करने का उपाय भी उसके पास था। सो बोला—

"राजन्! दूत ने मुझे सब कुछ बता दिया है। लेकिन आप रोये नही। मेरे कारण आपकी पुरानी पीड़ा उभर आई है तो मैं ही उसे दूर भी करूंगा। जामाता बनने की बात तो आपसे मिलने का एक बहाना था। पाँच पत्नियो का पति हूँ

में। आपकी पुत्री रत्नमंजरी मेरे सरक्षण मे है। आप उसे पुन प्राप्त कीजिए। खोई हुई निर्जीव चीजे भी मिल जाती है तो जीती-जागती राजकन्या क्यो न मिलती? अब आप अपनी और उसकी इच्छा से चाहे जिसके साथ उसका विवाह कीजिए।"

राजा नरसिंह को जैसे अपने कानो पर विश्वास नही हुआ। बच्चो की तरह मचल कर बोला—

"कहाँ है मेरी रत्ना ? क्या सच ही वह जीवित है ? यदि है तो कहाँ है ? मैं उसके सब अपराध क्षमा कर दूंगा।"

पतंगसिंह बोला—

"अपराध उसने ऐसा किया भी नही कि आप उसे क्षमा न कर सके। भावावेश मे आकर वह मेरे साथ चली गई थी। लेकिन मैंने उसे सुरक्षित आपकी अमानत के रूप मे रखा है।"

बस फिर पतगसिंह ने दासियो को सकेत दिया। दासियाँ रत्नमजरी को लेकर आई। शर्म और ग्लानि से रत्नमजरी ऊपर दृष्टि नही उठा पाई और भावावेग मे पिता नरसिंह की गोद मे जा पडी और फूट-फूट कर रोने लगी। राजा ने उसे अनेक ढगो से सान्त्वना दी, समझाया और बोले—

"बेटी! तू भाग्यशालिनी है, जो ऐसे नरपुंगव की पत्नी बनेगी। मैं बडी धूम-धाम से तेरा ब्याह करूँगा।"

पतगसिंह बोला—

"नही राजन्! ऐसा नही होगा। रत्नमजरी को मै

पसन्द नही हूँ। यदि पसन्द होता तो अब तक व्याह हो जाता। यह तो मुझे मूर्ख और जाने क्या-क्या समझती रही है। वर्षो यह मेरे पास रही, पर न यह मुझसे बोली और न मैं इससे। किसी कन्या की इच्छा के विरुद्ध मैं विवाह कर भी नही सकता।"

राजा ने रत्नमन्जरी की ओर देखा और बोले—

"क्यो रत्ना ? क्या तुझे ये पसन्द नही ?"

लज्जा त्याग कर रत्नमन्जरी बोली—

"पिताजी ! अभी मेरी पाँच बहनें और भी है। उन्हे बुला कर पूछें। ये बडे कठोर है। पोतनपुर के राजा वज्रनाभ का घोर अपराध इन्होंने क्षमा कर दिया तो क्या मेरा नहीं करेंगे, मै तो अबला हूँ। तात ! पसन्द की बात यो यह है कि ये मनुष्य नही, देवता हैं। इनको वनना हर नारी का सौभाग्य है। और ...।"

आगे कुछ नही कह पाई रत्नमन्जरी। सबके सामने उसने पतंगसिंह के पैर पकड़ लिए और बोली—

"नाथ ! अब मेरा मान कहाँ रह गया है ? भाँवरें नहीं पड़ी तो क्या मैं आपकी पत्नी नही रही ? मेरा समर्पण अन्य पत्नियो से कम तो नही। मेरा मन तो आपको ही पति मान चुका था। वैसे मैं बडी थी पर, पर अब सबसे छोटी बन कर रहूँगी।"

यह वार्त्तालाप सुनते ही मुक्तावती, लीलावती आदि भी निकल आयीं। मुक्तावती बोली—

"बहन रत्ना ! तुम ऐसा नाम हो, जिसमे मुक्ता, लाल और हीरा सब समा जाते हैं। ये सभी एक नाम रत्न मे सिमिट जाते हैं। नाम से इसलिए हम सब तुम रत्नमन्जरी मे समा गई हैं। तुम पहली हो, और पहली ही रहोगी। सच बात तो यह है कि तुम्हारे कारण ही हम इनकी बन पाई हैं। तुम्हे पाने के प्रयास मे यदि राजा वज्रनाभ मुक्ता, हीरा और लाल आदि लेने इन्हे न भेजता तो हम कहाँ से आती ? यदि अब भी ये तुझसे नही बोलेंगे तो हम पाँचो भी इनसे नही बोलेंगी।"

पतंगसिंह मुस्कराया। राजा नरसिंह हसने लगा और बोला—

"बेटियो ! ये बाते तो अब घर होंगी। तुम पाँचो रत्ना के साथ राजभवन चलो। इन्हे यही रहने दो। ये तो आडम्बर के साथ वर वेश मे नगर प्रवेश करेंगे। रत्ना को तुम्ही पाँचो दुलहिन बनाओगी।"

बस फिर तो हर्ष की लहर सी दौड गई। राजा नरसिंह छहो को अपने साथ राजभवन ले गया। वसन्तपुर सजने लगा। इधर मुहूर्त भी निकल गया। मुहूर्त भी निकाला पडित मार्तण्ड अग्निहोत्री ने ही। वे अभी तक पतगसिंह को नही पहचान पाये थे। पतगसिंह ने भी अभी यह बताना उचित नही समझा कि मैं ही एडू बन कर तुम्हारे यहाँ रहा था। फिर तो धूम-धाम से विवाह हुआ रत्नमन्जरी और पतगसिंह का। रानी वसन्तसेना ने रोते हुए कहा—

"बेटी ! बेटी तो पराई ही होती है। पर यों अचानक तू चली गई तो मैं रोते-रोते अंधी हो गई। अब तू फिर चली जायगी हमें छोडकर। लेकिन तेरे ऐसे जाने पर भी आज मैं प्रसन्न हूँ। कहावत भी तो है कि बेटी तो राजा की भी नहीं रहती।"

रत्नमजरी भी माँ से, पुरानी सखियों से और सभी स्वजनो से लिपटकर रोई। राजा बोले—

"पहले गई, तब भी रुलाया और आज भी जा रही है तो रुला रही है। पर पहले आंसू दु.ख के थे और आज के सुख के है।"

रत्नमंजरी को जाना ही कहाँ था अभी ? अभी तो उसे वसन्तपुर में ही रहना था, सो उसकी पालकी दूसरे—राज जामाता पतंगसिह के भवन मे पहुँची। वही दोनो आनन्द से रहने लगे। दहेज की घोषणा का प्रश्न आया तो राजा ने घोषणा की—

"दहेज कैसा ? सब कुछ इन्ही दोनो का है। कोई शुभ दिन आये तो मैं भी वही करूँ जो पोतनपुर नरेश वज्रनाभ ने किया था।"

रानी वसन्तसेना बोली—

"पिछली कहानियाँ मैंने भी सुनी है। मुक्तावती ने मुझे भी सब बातें बताई है। यदि आप राजा वज्रनाभ का अनुसरण करेंगे तो मैं भी रानी इन्दुमती के पथ पर जाऊँगी।"

"जरूर जाना।" राजा बोले—"वह शुभ दिन आये तो

कोई तरन-तारन मुनि भी आयें और मुनि आयें तो हम भी यह नश्वर जगत छोड़कर संयम पथ पर जाएँ।"

शुभ संकल्प मे शुभ दिन भी आ ही जाता है। मुनि सुमतिसागर पाँच सौ शिष्यों के साथ वसन्तपुर मे आये। सबने उनकी धर्म देशना सुनी। राजा-रानी की इच्छा, संकल्प मे बदल गई। पतंगसिंह वसन्तपुर का राजा बना। रत्नमंजरी अब वसन्तपुर की रानी थी। एक दिन वही यहाँ की राजकन्या थी। क्या से क्या हो जाता है? पतंगसिंह ने सास-श्वसुर का दीक्षा महोत्सव किया। रत्नमंजरी अपनी माँ से लिपटकर रोने लगी तो रानी ने कहा—

"पगली! ऐसे शुभ संयोग पर रोते नहीं है। तुझे विदा करते हुए जैसे मैंने खुशी के आँसू बहाये थे, ऐसे ही तू भी हर्षाश्रु बहा बेटी। दु:ख मत करना। हर कन्या माता-पिता से नेह हटाकर पति चरणों मे प्रेम लगाती है।"

"मैं बहुत खुश हूँ माँ!" रत्नमंजरी बोली—"बहन फूलकुमारी की तरह मैं भी कह सकूँगी कि मेरी माँ महान् साध्वी वसन्तसेना है और पिता राजर्षि नरसिंह है।"

दीक्षा महोत्सव समाप्त हुआ। राजर्षि नरसिंह और साध्वी वसन्तसेना ने गुरुवर सुमतिसागर के साथ अन्यत्र विहार किया। पतंगसिंह ने राज्य व्यवस्था सम्हाली। अब वह समय भी आ गया, जब पतंगसिंह विप्र मार्तण्ड अग्निहोत्री को अपना परिचय देता। एक दिन उसने विप्र को सभा मे बुलाया और बोला—

"विप्र देव ! वसन्तपुर राज्य के चार गांव पानतो सम्मान सहित भेंट करता हूं। आज मैं जो कुछ हूं, उसका प्राथमिक श्रेय आपको ही है।"

"सो कैसे?" विप्र मार्तंड अग्निहोत्री ने पूछा—"राजन्! मैंने तो कुछ भी नही किया। आप मुझे गांवो की जागीर दे रहे हैं, यह तो आपका अनुग्रह है। पर आपकी श्री वृद्धि का श्रेय मुझे तो बिल्कुल ही नही है।"

पतगसिंह बोला—

"विप्रवर ! अहसान-अनुग्रह करने वाला भूल जाए तो कोई आश्चर्य नही। क्योकि भले लोग अपना किया हुआ उपकार भूल ही जाते हैं। पर जिसके साथ अहसान किया जाता है, वह यदि भूले तो कृतघ्न कहलाता है और कृतघ्न के बराबर तो गोहत्या करने वाला भी पापी नही है।

"विप्रवर ! विमाता और पिता द्वारा निकाले जाने पर जब मैं भूला-भटका वसन्तपुर आया था, तब आपने ही मुझे आश्रय दिया था। आपके पुत्र मदन की पोथियो का बोझ रख कर मैं ही पाठशाला जाता था। याद करो विप्र ! आपने मुझे पहचाना नही, उसका कारण तो यही है कि अट्ठारह वर्षों में मेरी पहचान बदल गई है। तब मेरे मूंछें कहां थी ? पर घटना तो याद होगी ?"

विप्र बोले—

"याद है। सब कुछ याद है। पर मैंने तब आपको कौन-सा सुख दिया था ? रोटी-कपड़ो पर ही आपको रखा

था। ओढने को एक पुराना कम्बल ही तो दिया था। आप ऐसे गुणग्राही हैं? धन्य हैं आपके पुण्य! आपकी महानता को मैं नमस्कार करता हूँ।"

पतंगसिंह बोला—

"उस कम्बल की आपने अच्छी याद दिलाई। उसी कम्बल के कारण तो मैंने बड़ी-बडी दूर की आकाश यात्राएँ की हैं। अब तो वह उडनकम्बल है।

"विप्र! मनुष्य से ज्यादा तो मिट्टी ही कृतज्ञ होती है। तो क्या मैं मिट्टी से भी नीचे गिर जाऊँ? थोडे-से दाने मिट्टी मे डाल देते है तो बदले मे मिट्टी कई गुना करके अन्न देती है। ये चार गांव तो कुछ भी नही।"

विप्र बोला—

"अब बस इतना ही कहूँगा कि वसन्तपुर की प्रजा धन्य है, जिसने आप जैसा राजा पाया।"

यो पतगसिंह के दिन वसन्तपुर मे बडे अच्छे कट रहे थे, पर इन्ही दिनो उसे कचनपुर के सैनिको की भी याद आई, जिन्होने कचनपुर के राजा अर्थात् उसके पिता राजा जितशत्रु की आज्ञा का उल्लघन करके उसे जीवित छोडा था और हिरन की आँखे लेकर कचनपुर गए थे। पतंगसिंह के गुरु-आचार्य ने उन्हे आश्वासन दिया था कि राजा बनने पर पतगसिंह उन सैनिको को चार-चार गाँवो की जागीर देगा। पतगसिंह को गुणज्ञ मन्त्री गुणवर्धन और अपने गुरु आचार्य की भी याद आई। क्योकि इन [illegible] आज

वह राजा था और सबसे बड़ी बात यह थी कि वह जीवित था। पतंगसिंह के गुरु आचार्य ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उसके प्राण बचाये थे। पतंगसिंह को अपने पिता राजा जितशत्रु की भी याद आई। अब वह यह बताने में समर्थ था कि वास्तविकता क्या थी। अब वह विमाता अनंग-माला की नीचवृत्तियों का भण्डाफोड करने में समर्थ था। पतंगसिंह को उसके गुरु आचार्य से ही—कंचनपुर छोड़ते समय पर जानकारी मिली थी कि उसका विवाह चार महीने की शिशु अवस्था में इतनी ही छोटी बालिका कमला-वती के साथ हो चुका था। कमलावती जनकपुर के राजा जनकसेन की कन्या थी। पतंगसिंह अब उस प्रथम पत्नी को देखने के लिए भी व्यग्र था। उसके गुरु ने ही यह रहस्य भी बताया था कि काशी के ज्योतिर्विद पंडित विष्णुदत्त की भविष्यकला के आधार पर ही शिशुवय में उसका विवाह हुआ था। यदि ऐसा न होता तो पतंगसिंह मृत्यु-योग का शिकार हो जाता। इस तरह अट्ठाईस-तीस वर्ष की धुंधली स्मृतियों को याद करके पतंगसिंह ने कंचनपुर जाने का निश्चय कर लिया। कंचनपुर जाने के लिए ही तो उसने पोत-नपुर छोड़ा था। लेकिन छह महीने तक यहाँ वसन्तपुर में अटक जाना पड़ा। अब छह दिन में ही उसने सब तैयारियाँ करली। जो सेना वह पोतनपुर से लाया था, उसमें और वृद्धि करली। वसन्तपुर की चतुरंगिनी सेना और विशाल अन्य विशाल वाहिनी सहित पतंगसिंह ने कंचनपुर को प्रस्थान

कर दिया। छहो पत्नियो को भी साथ लिया। राज्य व्यवस्था मन्त्री आदि ने सम्हालली।

× × ×

कहावतो का पिता अनुभव और माता अनुभूति होती है। इसीलिए ये ठीक होती है। अणुमात्र भी गलत सिद्ध करने की गुजाइश इनमे नही होती, साथ ही ये अमर होती हैं। युग बदल जाते है, पीढियाँ बीत जाती है, पर ये कहावतें ज्यो की त्यो बनी रहती है। पुरानी होती है, पर कितनी पुरानी, यह कहना मुश्किल है। जैसे अनन्तकाल से भवभ्रमण करने वाली आत्मा हर बार नया शरीर धारण करती है, वैसे ही ये कहावते भी नये-नये शब्द का कलेवर तो धारण करती है, पर इनकी आत्मा एक ही होती है। ऐसे ही एक कहावत को गिरधर कविराय ने ये शब्द दिये—

"बिना विचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग मे होत हँसाय॥

अब यही दशा कन्चनपुर के राजा जितशत्रु की थी। कोई भी हो, बिना विचारे करेगा, सो तो पछतायेगा ही। राजा जितशत्रु ने इतना भी नहीं विचारा कि पतगसिह से स्पष्टीकरण तो मांग लेता। रानी अनगमाला के रूप पर वह इतना आसक्त था कि उसके भीतर भरे विष को नही देख पाया। कुछ वर्ष बीते तो उसे पतंगसिह की याद आने लगी। आखिर तो वह उसका बेटा था और बड़ी मानताओ तथा प्रतीक्षा के बाद उसका जन्म हुआ था। राजा जितशत्रु अब वृद्ध हो

गया था और उसके बुढापे का सहारा उसकापुत्र उसकी जानकारी मे मर चुका था। उसे तो स्वय उसने ही मरवाया था। रानी अनंगमाला अब उसकी बात भी नही पूछती थी। वह वध्या निकली और उसने किसी सन्तान को जन्म नही दिया। अब जब वह राजा से बातें करती तो कभी सीधे मुंह नही बोलती थी। इसलिए भी राजा जितशत्रु पतंगसिंह की आज्ञाकारिता और विनम्रता की याद कर-कर के आंसू बहाता था।

सबसे बड़ा सकट का दिन तो तब आया, जब जनकपुर के राजा जनकसेन ने कन्चनपुर आकर राजा जितशत्रु से कहा—

"राजन्! कहावत तो यही है कि बेटी आप घर या बाप घर। कमलावती बाप के घर है। पर अब उसके दि पियाघर रहने के है। कमलावती मेरी बेटी ही नही, बेटा भी है। उसके पति को ही राज्यभार देकर मैंने सयम लेने क निश्चय किया है। अब आप उसे यहां बुला लें। तब तो आप दूध पीती को धाय की गोद मे देखा था। अब देखेंगे त दग रह जायेंगे और कहेगे यह वही कमलावती है जो विवा मण्डप मे रो रही थी, तब धाय ने दूध पिलाकर इसे चु किया था।"

राजा जितशत्रु मुंह नीचा किये सुनता रहा। अब क्य कहता बेचारा। उसे मौन देख राजा जनकसेन ने पु कहा—

"मेरे जामाता पतगसिह को तो बुला दो। उन्हे देखने के लिए मेरी आँखें तरस रही हैं। अब तो वे बहुत बडे हो गए होगे।"

जितशत्रु अब भी कुछ नही बोला। अन्त मे उसने दुस्साहस करके कह डाला—

"पतगसिह अब कही नही है। उसने एक ऐसा गुरुतम अपराध किया था कि मैंने उसको मृत्युदण्ड दिया।"

"मृत्युदण्ड दिया ?" चीख पडा राजा जनकसेन। चीखकर ही बोला—"तुम पिता हो या हत्यारे ? पुत्र को मरवा डाला ?"

जितशत्रु ने निर्लज्जता से उत्तर दिया—

"मेरा पुत्र था। मैंने मरवा दिया। आप इतने रोष मे क्यो बोलते हैं ?"

"आपका पुत्र था तो मेरा भी जामाता था।" जनकसेन ने रोष मे ही पुन कहा—"उसके साथ मेरी बेटी का भाग्य जुडा था। मेरी बेटी ने तो उसका मुंह भी नही देखा। आपको मेरी बेटी को विधवा बनाने का क्या अधिकार था ?"

जितशत्रु ने अपने अन्याय पर न्याय का आवरण डालते हुए कहा—

"आपका जामाता था, तो मेरा पुत्र पहले था। न्याय के लिए जो अपना पुत्र भी नही देगे, वही तो न्यायप्रिय राजा है। यदि मैं उसे छोडता तो न्याय की मर्यादा ही नष्ट हो जाती।"

राजा जनकसेन अब कुछ नही बोला। बच्चो की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। मन्त्री गुणवर्धन उसे सहारा देकर ले गए और अतिथिभवन में ले जाकर तरह-तरह से धैर्य बंधाया। दूसरे दिन ही जनकसेन ने अपने राजनगर जनकपुर के लिए प्रस्थान किया। बडे भारी मन से वे जनकपुर पहुंचे और रानी पुष्पावती को सब कुछ सुना डाला। रानी रोई। पूरा जनकपुर इस शोक समाचार को सुनकर दुःखी हुआ। कमलावती की सखियाँ उसे घेर कर बैठ गईं और अपना शोक प्रकट करने लगी। पर वाहरे कमलावती! वह उदास भी नही हुई। जाने उसके मन मे कौन-सा विश्वास था कि वह तो मुस्कराई थी। सती का विश्वास अटल होता है। उसने सखियो को समझाया—

"सखियो! सती नारी कभी विधवा नही होती। तुम्हारे जीजा का बाल भी बांका नही हुआ। मेरा मन कहता है कि वे अब शीघ्र ही आयेंगे। वे जहाँ भी होगे, अपने यश की किरणें फैला रहे होगे।

"सखियो! जब मुझे होश भी नही था, तब मेरा विवाह उनके साथ हुआ। विवाह के समय उनके जन्मपत्र की प्रतिलिपि एक यहाँ भी आई थी। आज तुम्हे वह रहस्य बताती हूं। जब चौसठ विद्याएँ मैने पढ ली तो अपनी रानी मां से मैने वह जन्म पत्र माँग कर देखा। धाय माँ भी पास बैठी थीं। उन्होंने पूछा था कि बिटिया! जामाता कब आयेंगे। इसमें क्या लिखा है। तब मैंने जो उन्हे बताया था कि 'वे' कब

आयेंगे यह तो इसमे नही लिखा। पर यह लिखा है कि वे चार राज्यो के राजा और सात पत्नियो के स्वामी बनेंगे।

"सखियो! ज्योतिष भविष्य का नेत्र है। इसी नेत्र से देखकर मैं कहती हूँ कि वे आयेंगे और अनेक वर्षों तक इस धरा का भोग करेंगे, क्योंकि "वीर भोग्या वसुन्धरा।"

कमलावती के इस अटल विश्वास ने सखियो को ही नही, राजा जनकसेन और रानी पुष्पावती तथा समस्त जनकपुर वासियो को आश्वस्त कर दिया। अब सभी पतगसिंह के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगे। अब तो कमलावती की सखियाँ इतनी आश्वस्त और प्रसन्न थी कि उससे छेडखानी भी करने लगी। एक दिन चम्पा, कनकवल्लरी, श्यामा और वल्लभा कमलावती को घेरे उद्यान मे बैठी थी। जाडो के दिन थे। सब धूप सेवन का सुख ले रही थी। तभी चम्पा ने छेडा—

"सखी! यदि जीजाजी अभी अचानक आ जायें तो कैसे पहचानेंगे कि तुम्ही कमलावती उनकी 'वह' हो।"

कनकवल्लरी बोली—

"चम्पा तो पागल है! इसमे न पहचानने मे क्या बाधा है? तारो मे चन्दा तो एक ही होता है। हम पाँचो मे एक ही तो चन्दा है। सो झट पहचान लेंगे।'

कनकवल्लरी का प्रतिवाद करते हुए श्यामा ने कहा—

"कनक! चम्पा की बात तो तूने काट दी, पर मेरी काट। अगर अचानक जीजाजी आ जायें तो हमारी सखी उन्हें

कैसे पहचानेगी कि ये वही हैं, जिनकी प्रतीक्षा मे यह रात को तारे गिना करती हूँ।"

सबकी सुनने के बाद कमलावती बोली—

"सखियो ! ये स्थूल आँखें किसी को नही पहचानती। ये तो एक बार के देखे हुए को दुबारा देखकर पहले देखे की पुष्टि करती हैं, इसे ही तुम पहचान कहती हो ? पर पहचान तो वह है, जिससे पूर्व भव के प्रियतम अथवा प्रियतमा को पहचाना जा सके। यह पहचान आत्मा द्वारा होती है। आत्मा आत्मा को यो ही पहली झलक मे पहचान लेती है।"

"सखियो ! पति-पत्नी का सम्बन्ध जन्मजन्मान्तरो का होता है। तभी तो दो अनजाने-अजनबी पूर्वभव की प्रबल प्रेरणा से किसी-न-किसी बहाने से मिल जाते है।"

सखियाँ भी गम्भीर हो गई। विनोद गभीरता मे बदल गया। यथासमय सब उठकर निज-निज घर गई। कमलावती अपने भवन मे पहुँची। उसकी प्रतीक्षा बडी मीठी थी। उसमें विरह-वियोग की-सी वेदना नही थी। क्योकि वियोग पीडा तो एक बार मिलकर बिछुड़ने के बाद होती है। जबकि राजकुमारी कमलावती की प्रतीक्षा उस कुमारी षोडशी की तरह थी, जो दिवास्वप्न देखा करती है और अपनी कल्पना मे अपने जीवन साथी की एक प्रतिमा गढकर उससे मिलने की प्रतीक्षा करती है। अन्तर इतना ही था कि कुमारी षोडशी का पति अनिश्चित और अनजान होता है, जबकि कमलावती का निश्चित था, और वह था, नरपुंगव पतंगसिह। पितृवय

मे विवाह हो जाने के कारण कमलावती व्याही भी थी, और अबोधावस्था मे व्याही गई थी, इसलिए कुमारी की तरह मीठी-मीठी प्रतीक्षा करती थी। सच तो यह है कि जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे अवश्य मिलता है।

× × ×

नरपुंगव पतगसिंह अब अपनी विशालवाहिनी सहित कंचनपुर के निकट पहुँच ही गया। दो देशो का राजा था पतगसिंह—पोतनपुर और वसन्तपुर। दो देशो की विशाल-वाहिनी का आना सुनकर राजा जितशत्रु के तो छक्के छूट गए। पतगसिंह ने उससे नाटकीय ढग से मिलने का समुचित प्रबन्ध कर लिया था। इसके साथ ही वह अपने पिता जित-शत्रु राजा को अनावश्यक रूप से डराना-धमकाना भी नही चाहता था।

इसके लिए वह रात को अपने शिविर से निकला और उडनखटोले पर बैठकर अपने गुरु आचार्य के शयनकक्ष मे पहुँचा। आचार्य तो उसे देखकर हक्के-बक्के हो गए और सहसा ही उसे पहचान नही पाये। तब उसने स्वय ही अपना परिचय आचार्य के पैर पकडकर दिया और बोला—

'आचार्य देव! मै आपका वही शिष्य पतगसिंह हूँ, जिसका रोम-रोम आपका आभारी है। आपके ऋण से तो मै कभी उऋण नही हो सकता। आपके दिये हुए रत्न आज भी मेरी जांघ मे सिले है। इनका व्यय इसलिए नही किया कि आवश्यकता ही नही पडी। इन्हे तो आप पुन स्वीकार कर

हो लीजिए।

आचार्य बोले—

"अरे पतंग ! तू इतना बड़ा हो गया कि मै तो चाकर ही खा गया। बेटा, आज की प्रसन्नता का वर्णन मैं कर नहीं सकता। तू अपनी विगत कहानी झटपट सुना दे। मेरे कान बड़े उत्सुक है।"

पतंगसिह अपनी विगत कहानी—अट्ठाइस-तीस वर्षों की कहानी सुनाने लगा। और बातो ही बातो मे खड्ग से जघा चीर कर गुरु प्रदत्त रत्न निकाल डाले। रक्त देखकर आचार्य घबराये। पतंग बोला—

"घबराइये नही गुरुदेव ! थोड़ा जल दीजिए।"

गुरु ने पास रखा जलपात्र दे दिया। पतगसिह ने झटपट शिरालजून वृक्ष के सूखे पत्ते हाथो से रगडे और पानी मे मिलाकर घाव पर लगाये। देखते-देखते ही घाव ऐसे भर गया, जैसे कुछ हुआ ही न हो। इसी प्रसंग में पतंगसिह ने शिरालजून वृक्ष से प्राप्त फल, पत्ते, छाल की वह टोपी, जिसे पहनकर पतंगसिह अदृश्य हो जाता था और वृक्ष तंतुओ से बने उडनकम्बल का रहस्य बताया। सब कुछ सुनाने के बाद पतंगसिह मत्री गुणवर्द्धन के शयन कक्ष मे भी पहुँच गया—अदृश्य करने वाली टोपी पहने रहने के कारण उसे कोई नहीं देख पा रहा था। मत्री सो रहा था। पतंगसिह ने धीरे-धीरे आवाजें देकर मत्री को जगाया और बोला—

"मन्त्रिवर ! मैं आपका पतंगसिंह हूं। मुझे देखो।"

चकित-विस्मित मंत्री बोला—

"पतंगसिंह ! तुम्हारा स्वर तो मैं कुछ-कुछ पहचान रहा हूं। पर तुम मुझे दीख नहीं रहे। इसका क्या रहस्य है।"

पतंगसिंह ने टोपी उतारी और मंत्री के पलंग के पास ही सुखासन पर बैठ गया। दोनों में बातें हुई। बहुत देर तक बतियाते रहे दोनों, फिर पतंगसिंह ने मंत्री को वे सब बातें भी समझाईं, जो दूसरे दिन सवेरे मंत्री को राजा जितशत्रु से कहनी थी। अपना काम करके पतंगसिंह अदृश्य टोपी पहन कर उडनकम्बल पर बैठा और एक कोस दूर नगर से बाहर स्थित अपने पडाव पर गया।

जब सवेरा हुआ तो राजा जितशत्रु के पास संवाद आने लगे कि रातोंरात किसी बडे राजा ने अपनी विशाल सेना सहित नगर के बाहर पडाव डाल दिया है। राजा जितशत्रु चिंतित हुआ। तभी मंत्री गुणवर्द्धन उसके पास पहुंचा और बोला—

"राजन् ! मैंने रात एक विचित्र सपना देखा है। यह सपना ब्राह्ममुहूर्त में देखा है, इसलिए सच भी हो सकता है। मैंने सपने में देखा है कि एक राजा ने हमारे नगर कंचनपुर को घेर लिया है। उसकी सेना बहुत विशाल है। हम, आप और मैं तथा सब सामंत उस राजा के पास गए और उसे सम्मान सहित यहां लाये हैं तब उस राजा [illegible]

हुआ। वरना तो उसने नगर को नष्ट-भ्रष्ट करने का निश्चय ही कर लिया था।"

चिन्ता के स्वर में राजा जितशत्रु ने मन्त्री गुणवर्द्धन से कहा—

"मंत्री! तुम सपने की बात कहते हो, पर मैंने तो अभी-अभी सुना है कि सच मे ही किसी राजा ने अपनी सेना सहित पड़ाव डाला है।"

कृत्रिम आश्चर्य व्यक्त करते हुए मत्री ने कहा—

"तब तो मेरा सपना सच हो रहा है। अब तो उसके आगे की बात भी सच होगी। अत. आप धूम-धाम से उस राजा को स्वागत पूर्वक यहाँ ले आइए और नगर को विध्वस से बचाइए।"

राजा जितशत्रु बोला—

"इस नगर को मैं कब तक बचाऊँगा? एक बाल सफेद होने पर राजा लोग राजपाट छोडकर सन्यास ले लेते है। मैं बूढा होकर भी राज्य से चिपका हूँ। जब मर जाऊँगा, तब भी तो कोई विदेशी राजा कचनपुर के राजसिहासन पर बैठेगा ही। अच्छा यही है कि मैं इसी आक्रामक राजा को राजपाट सौंप दूँ और युद्ध की खून-खराबी से बचूँ।"

मंत्री बोला—

"यही तो मैं कह रहा हूँ। आप उसे स्वागतपूर्वक ले आइए। नही तो वह युद्ध की चुनौती देगा, और युद्ध का परिणाम तो आप जानते ही हैं। युद्ध मे जीतने वाला हारता

है और हारने वाला मरता है।"

'तो ठीक है, स्वागत की तैयारियाँ कराओ।"

रत्नादि लेकर राजा जितशत्रु मन्त्रियों सहित पतंगसिंह के पड़ाव पर पहुँचा। इन स्वागतार्थियों में पतंगसिंह के गुरु आचार्य और महामात्य गुणवर्द्धन—दो ही ऐसे थे, जो पतंगसिंह को जानते थे। शेष सबके लिए तो वह अजनबी आक्रामक राजा था। पर उसका व्यक्तित्व और रूप ऐसा प्रभावी था कि सब उस पर मोहित हो गए।

राजा जितशत्रु आग्रह के साथ पतंगसिंह को राजभवन ले गया। उसकी छहों पत्नियाँ अन्तःपुर में रहतीं और पतंगसिंह के स्वागत-सम्मान में राजा जितशत्रु ने विशेष सभा जोड़ी। सभा का संचालन करते हुए राजा जितशत्रु ने पतंगसिंह से कहा—

"राजन्! आप युद्ध करके इस राज्य पर अधिकार प्राप्त करते। इससे अच्छा यही है कि आप मेरी इच्छा से इस सिंहासन को शोभित करें। क्योंकि मेरे बाद कोई-न-कोई विदेशी राजा ही यहाँ का शासक बनेगा।

पतंगसिंह बोला—

"राजन्! ऐसे अनीतिपूर्वक मैं यह राज्य नहीं ले सकता। या तो युद्ध करके राज्य लेना हूँ या फिर उत्तराधिकार से प्राप्त राज्य ही लेना चाहिए। दान में दिया गया राज्य कोई क्षत्रिय कैसे स्वीकार करेगा?"

"युद्ध?" युद्ध के नाम से ही राजा जितशत्रु घबरा

गया। उसकी घबराहट देखकर पतंगसिंह ने कहा—"राजन्! आप से तो मैं युद्ध भी नहीं करूँगा अब। क्योंकि युद्ध बराबर के राजा से ही करना अच्छा होता है। वह भी तब, जब युद्ध का कोई कारण हो। आप वृद्ध राजा हैं और मेरे पिता के समान हैं।"

पतंगसिंह की विनम्रता, सौजन्यता और भलमनसाहत से राजा जितशत्रु प्रभावित हो गया, बोला—

"राजन्! यदि आप मुझे अपने पिता के समान मानते हैं तो आप मेरे पुत्र ही बन जाइए। इस राज्य को उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य ही समझिए।"

पतंगसिंह को पुरानी बातें उखाड़ने का अवसर मिल गया। उसने पूछा—

"राजन्! क्या आपके कोई पुत्र नहीं है? मैं भला इस योग्य कहाँ जो आपका पुत्र बन सकूँ?"

राजा जितशत्रु बोला—

"राजन्! भाग्य ने पुत्र दिया और ले लिया। मैं बड़ा अभागा हूँ।"

राजा जितशत्रु की आँखें गीली हो गईं। पतंगसिंह बोला—

"राजन्! मेरे पुत्र को तो आपने मरवा दिया और अब ऐसे रोते हैं, जैसे आपने कुछ किया ही नहीं। आप नहीं जानते कि आपका पुत्र चरित्रवीर था। बुरा न मानें, आपकी रानी अनंगमाला कुलटा और दुराचारिणी है। उस दुष्टा ने

अपने ही सौतेले पुत्र से भोग-याचना की थी। आपके चरित्र-वान पुत्र ने उसकी इस कुत्सित याचना को ठुकरा दिया तो आपने उसे मरवा दिया।"

आश्चर्य से राजा जितशत्रु पतंगसिंह को फटी-फटी आँखों से देखने लगा। फिर बौखलाकर बोला—

"आपको यह सब कैसे मालूम है?"

"सारा नगर जानता है कि आपका बेटा किस तरह और क्यों मारा गया?"

"लेकिन यह आप कैसे जानते हैं कि मेरी रानी कुलटा है और मेरा पुत्र निर्दोष था?"

पतंगसिंह बोला—

"सचाई, सदा छिपी नहीं रह सकती। झूठ भी सत्य के पैरों से चलता है। आप अपनी रानी को बुलाकर पूछिए। कड़ाई से पूछिए, सब स्पष्ट हो जायेगा। यदि वह नहीं मानेगी तो मैं स्वीकार करा लूंगा। आप अपनी उस दासी से पूछिये, जो गुरु-गृह से आपके पुत्र को धोखे से निकालकर लायी थी।"

राजा जितशत्रु ने तुरन्त रानी अनंगमाला और उसकी दासी को बुलवाया। उसने पहले दासी से ही पूछा—

"दासी! सच-सच बतादे कि मेरा पुत्र रानी के महल में कैसे आया था। सच बताने पर तुझे छोड़ दिया जायगा, वरना तेरी मृत्यु निश्चित है।"

दासी ने सब कुछ ज्यों का त्यों बता दिया—

"स्वामी ! जो कुछ कहूँगी सच ही कहूँगी। रानीजी ने एक दिन कुमार पतगसिंह को गुरु-गृह में लक्ष्यवेध का अभ्यास करते देखा था तो उन पर मोहित हो गई। फिर उन्हें मेरे द्वारा इस बहाने से बुलवाया कि राजा यानी आप बुला रहे हैं। उस दिन आप वन खेलन को गए थे। कुमार रानी के महल में पहुँचे और ..।"

"बस-बस !" राजा ने दासी को बीच में ही रोककर कहा—"अब आगे का हाल हमारी सखी सन्नारी कहेगी। हाँ तो रानी तू कह दे अपनी करतूत।"

रानी अनगमाला तो थर-थर काँपने लगी। उसकी घबराहट ने सब कुछ कह दिया। अब तो सब स्पष्ट हो गया। राजा जैसे पछतावे के लवणसागर में डूब गया। पतगसिंह से लिपटकर रोने लगा और रोते-रोते बोला—

"राजन् ! तुम देवदूत बनकर आये हो। अब मैं क्या करूँ? मेरा बेटा पतगसिंह अब नहीं मिलेगा मुझे। यह रहस्य मुझे पहले क्यों नहीं मालूम हो पाया? हा देव ! तू बड़ा कठोर है ! बड़ा क्रूर खिलाड़ी है !"

राजा को यों विलाप करते देख, मन्त्री गुणवर्धन ने राजा का हाथ पकड़कर कहा—

"राजन् ! शोक त्यागें। आपके चिरंजीव पुत्र पतगसिंह ही आपके सामने बैठे हैं।"

"अरे सच मन्त्री !" कहते हुए राजा जितशत्रु ने मन्त्री को ही आलिंगन में भर लिया। फिर पतगसिंह से लिपट

गए। कुछ कहते नही बन रहा था उनसे। उठकर पतगसिंह ने राजा के चरण पकडे और बोला—

"तात! अब शोक त्यागे। आपका कुपुत्र आपके सामने खडा है। अब जो चाहे दण्ड दीजिए।"

राजा बोला—

"वत्स! मुझे लज्जित मत करो। मै अपराधी हूँ। तुम मुझे कुछ भी दण्ड देना, पर मैं इस कुलटा को तो अवश्य ही मृत्युदण्ड दूंगा।"

पतगसिंह ने कहा—

"पिताजी! हर मनुष्य अपने किये का दण्ड पाता ही है। यह भी पायेगी। इसके अपावन रक्त से आप क्यो अपने हाथ रगते है? इसे छोड ही दीजिए।"

"अच्छा बेटा!" राजा ने कहा—"तेरे आने की खुशी मे मै इसे नही मारूँगा, पर इसे अब कचनपुर मे नही रहने दूंगा।"

राजा जितशत्रु ने अनगमाला को देश निकाले का दण्ड देकर उसे नगर से निकाल दिया। उस दिन कचनपुर मे हर्ष का सागर उमड पडा। नगरभर सजाया गया। कई दिनो तक हर्षोत्सव मना और इसी अवधि मे राजा जितशत्रु ने पतंगसिंह का राज्याभिषेक किया। अब पतगसिंह राजा हुआ। लेकिन पिता की दीक्षा से पहले उसने राजसिंहासन पर बैठना उचित नही समझा। फिर भी राज्याधिकारी के नाते उसने अपने प्राणरक्षक चार सैनिको को चार-चार गांवो की जागीर दे दी।

राजा जितशत्रु ने भी उन सैनिको को सम्मानित करते हुए कहा—

"सच्चे रूप मे राजभक्त सैनिको ! तुम्हारी दूरदर्शिता के कारण ही मैं आज अपने पुत्र को देख रहा हूं।"

इसके बाद पतंगसिंह अपने ससुराल जनकपुर पहुंचा। उसे पाकर राजा जनकसेन तथा रानी पुष्पावती को जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन कौन करे ? सब कमलावती के भाग्य और उसके अटल विश्वास की सराहना करने लगे। कुछ दिन ससुराल मे रहने के बाद पतंगसिंह ने जब कनकपुर जाने की अनुमति अपने श्वसुर राजा जनकसेन से मांगी तो वे बोले—

"जामाता ! विदा तो अब तुम मुझे करोगे। मैं तुम्हें क्या विदा करूंगा ? तुम्हारा पदार्पण कितना शुभ हुआ है कि वह शुभ दिन भी आ गया, जबकि मैं दीक्षा ग्रहण करूंगा। नगर मे तपोधन आचार्य करुणाकर आये हैं। राज्य सम्भालो और मुझे अनुमति दो।"

पतंगसिंह उदास हो गया। कमलावती भी आंखो मे आंसू भर लाई। पतंगसिंह ने दोनो की ओर से कहा—

"तात ! अब आप भी मुझे छोड़ जायेंगे ? क्या अब आपकी छाया मुझ पर नही रहेगी ?"

राजा जनकसेन बोले—

"वत्स ! मिलना-बिछुडना तो संसार का नियम है। यदि अब तुम मुझे रोक भी लोगे तो एक दिन काल मुझे नहीं

छोड़ेगा। वह तो किसी को नहीं छोड़ता, मोह में मत पड़ो। प्रसन्न मन मुझे अनुमति दो वत्स !"

पतगसिंह का धर्म-उत्साह जाग गया। बोला वह—

"तात ! धर्मकार्य में मैं आपका अन्तराय नहीं बनूंगा। जैसे श्वसुर द्वय—राजा वज्रनाभ और नृप नरसिंह का दीक्षा महोत्सव किया, वैसे ही आपका भी होगा।"

बस, अब देर क्या थी ? धूमधाम से पतगसिंह का राज्याभिषेक हुआ और फिर जनकपुर के राजा की हैसियत से उसने मुमुक्षु जनकसेन राजा और रानी पुष्पावती का दीक्षा महोत्सव किया। दोनों की शिविकाएं उद्यान पहुंची। नगर-भर ने खुशी के आंसू बहाये। आचार्य करुणाकर ने दोनों को अपनी शरण में लिया। जैसे सर्प बिना झिझक के अपनी केंचुली उतार देता है, वैसे ही राजर्षि जनकसेन ने राजसी वस्त्राभूषण उतार डाले और पंचमुष्टि लोच करके मुनिवेश धारण किया। फिर दोनों ने—राजर्षि जनकसेन और साध्वी पुष्पावती ने गुरु से अन्यत्र विहार किया।

पतगसिंह जनकपुर का राजा बना और कमलावती रानी। नगर की शासन-व्यवस्था में उसने कुछ मौलिक परिवर्तन भी कर डाले। कुछ दिन जनकपुर में रहने के बाद पतगसिंह कमलावती को लेकर पद्मनपुर में आया, जाने क्यों, राजा जितशत्रु की आंखों में आंसू भर आये। पतगसिंह ने आश्चर्य से पूछा—

"तात ! क्या कमलावती जैसी पुत्रवधू

नही लगी ? इस शुभ वेला मे आपकी आंखो मे आंसू क्यों ? हां, मैं समझ गया शायद इसीलिए आप दुःखी है कि आज मेरी माता कंचननैना जीवित नही है। यदि वे होती तो . .।"

जितशत्रु ने पतगसिह को वक्ष से लगाते हुए कहा—

"हां वत्स ! एक कारण यह भी है। पर मैं तो आज दूसरे ही कारण से दु खी हूं। बैठो बेटा ! बहू कमला ! तुम भी बैठो। मै आज यह कारण भी बता दूं।"

पतंगसिह और कमलावती—दोनो बैठ गए। वयोवृद्ध राजा जितशत्रु दोनो को मन की बात बताते हुए बोले—

"पतंग बेटा ! मनुष्य कितना ही समर्थ हो, पर दैव अपने मन की करता है, दैव मनुष्य की इच्छा कभी पूरी नही होने देता। जब तुम्हारा विवाह हुआ था, तब तुम मात्र तीन-चार महीने के शिशु थे। कमलावती भी इतनी ही बडी थी। यह विवाह अनहोना विवाह था, सो एक अनहोनी यह हुई कि मैं शिशुवधू को अपने साथ नही ला सका था। मैंने तुम्हारे श्वसुर राजा जनकसेन से कहा था कि बहू के बडी होने पर जब मैं बेटे को लेकर बहू की विदा कराने आऊंगा तो आज की तरह ही बरात लेकर आऊंगा। तब बहू की विदा उसी तरह धूमधाम से होगी, जैसे विवाह के बाद होती है और तभी मैं दहेज भी लूंगा।"

"बेटा ! पुत्रवधू को देखने की इच्छा लेकर ही तेरी मां तुझे पांच वर्ष का छोड़कर चल बसी और मैं भी अपनी इच्छा पूरी नही कर पाया। जिस ढंग से मैं बहू की विदा कराना

चाहता था, उस ढंग से नही करा सका।"

पतगसिंह बोला—

"तात ! यह रहस्य आपने पहले क्यो नही बताया ? इस काम को करने मे क्या कठिनाई थी ?"

राजा जितशत्रु बोले—

"बेटा ! मैं तेरे श्वसुर का अपराधी था। उनके सामने जाने का मेरा साहस नही हुआ। पर अब मैं अपनी इच्छा यही कचनपुर मे पूरी करूँगा।"

फिर तो राजा जितशत्रु ने पतगसिंह का विवाहोत्सव जैसा बडा भारी उत्सव कचनपुर मे मनाया। पन्द्रह दिन तक यह उत्सव चला। इस हर्षोत्सव के बाद ही कचनपुर मे मुनि धर्मघोष पधारे। पतगसिंह अपनी सातो पत्नियो को लेकर मुनि देशना सुनने गया। राजा जितशत्रु, मन्त्री गुणवर्धन और पतगसिंह के गुरु आचार्य भी गए। पूरा नगर ही उद्यान मे पहुँच गया। सब ने मुनि की अमृतमयी देशना सुनी। ससार की निस्सारता और धर्म की सारता पर मुनि ने ऐसा प्रकाश डाला कि श्रोता विभोर हो गए। राजा जितशत्रु तो प्रतिबुद्ध ही हो गए। उन्होने मुनि से दीक्षा की अनुमति मांगी तो मुनि बोले—

"राजन् ! जैसा करने से तुम्हारी आत्मा सुख माने, वही करो, पर शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।"

यो अनुमति प्राप्त कर राजा जितशत्रु प्रव्रजित हुए। पतगसिंह ने पत्नियो सहित श्रावक के बारहो व्रत धारण

किये। सब लौटकर नगर मे आये। राजा जितशत्रु ने पतंग-सिंह से कहा—

"पुत्र ! अब तुम राज्य भार सम्हालो और मुझे अनुमति दो।"

पतगसिंह ने आग्रह किया—

"पूज्य तात ! सब चले गए। मेरे तीनो श्वसुर अणगार बन गए। वर्षों बाद आप मुझे मिले हैं, और अब आप भी मुझे छोड़ कर चले जायेंगे तो मैं किस के सहारे रहूँगा ? मैं आपको नही जाने दूंगा आप अभी घर रह कर ही धर्माराधन कीजिए।"

राजा बोले—

"पुत्र ! यदि घर पर ही महाव्रतो का पालन हो सके तो मुनि लोग संसार त्यागकर क्यो चारित्र का पालन करें ?

"वत्स ! मुझे अपने समधियो से शिक्षा लेनी चाहिए कि वे आगे बढ गए और मैं पिछड गया। राजा वज्रनाभ, राजा नरसिंह, राजा जनकसेन तीनो ही आत्मोद्धार पथ के पथिक बन गए और मैं रह गया। जब मौत आकर मुझे दबोच लेगी, तब मैं क्या कर पाऊँगा ? मेरे सभी बाल सफेद हो गए। मैं वृद्ध हो गया, पर मेरी तृष्णा अब कब तक युवती बनी रहेगी ?

"पतग ! चारित्र का पालन स्वस्थ शरीर रहते करना चाहिए। तो तू अब वृद्ध पिता को भी नहीं करने देगा ? विचार कर, मैं तेरा साथ कब तक दूंगा। हमारे कुल की परम्परा ही यही है। मुझे राज्य देकर मेरे पिता ने दीक्षा

अगीकार की। तुझे राज्य देकर मैं चारित्र ग्रहण कर रहा हूँ और अपने पुत्रो को राज्य देकर तू भी सयम लेना।"

राजा जितशत्रु के समझाने पर पतगसिह का मोह भग हो गया। उसने पिता का भी भक्त दीक्षा महोत्सव किया। दीक्षा अगीकार कर राजर्षि जितशत्रु ने गुरु धर्मघोष के साथ विहार किया। पतगसिह कचनपुर का राजा बना। अब वह चार राज्यो का राजा था। उसके सात रानियाँ थी। उसके चारो राज्यो की प्रजा उसके सुशासन मे सुखी थी। □

11

एक बार कंचनपुर की शोभा पुनः देखें। नगर सुन्दर, सुहाना और रम्य है। राजभवन सात मंजिल का है और बहुत ही भव्य तथा दर्शनीय है। इसकी दीवारें, फाटक आदि सब रत्नजटित हैं। ऊपर सुवर्ण-मण्डित कलश और कंगूरे हैं, जिन पर ध्वजाएँ फहराती हैं। ध्वजाएँ दण्ड के साथ उसी तरह जुड़ी हैं, जैसे कर्मबंध के साथ आत्मा जुड़ी रहती है। ध्वजा यौवन और लक्ष्मी की तरह चंचल है। जैसा राजभवन भव्य और सुन्दर है, वैसे ही भवन श्रेष्ठियों के भी हैं। अर्थात् कंचनपुर धनी लोगों का नगर है। राजमार्ग और वीथियाँ साफ-सुथरे हैं। नगर में निर्मल नीर वाले कई सरोवर हैं। चारों ओर हरे-भरे सफल वृक्षों वाले रम्य उद्यान हैं। ऐसे सुन्दर-मनोहारी नगर का राजा है, पतंगसिंह।

राजा पतंगसिंह वीर, पराक्रमी, न्यायपरायण, धर्मनिष्ठ और प्रजावत्सल है। उसके राज्य में धनी-निर्धन, मूर्ख-विद्वान् और छोटे-बड़े—सभी सुखी और संतुष्ट हैं। प्रजावत्सल राजा पतंगसिंह रात में वेश बदलकर नगर में घूमता है और अपनी प्रजा के सुख-दुःख देखता है। उसके पास एक उड़नकम्बल भी है। इस कम्बल पर बैठकर रात में ही, जब सब सो जाते हैं—राजा पतंगसिंह कभी पोतनपुर जाता है, कभी वसन्तपुर और

कभी जनकपुर। इन तीनो नगरो का सुशासक भी वही है। चार बड़े राज्यो का राजा है पतगसिह और कचनपुर मे रहकर ही वह अन्य तीनो राज्यो की शासन-व्यवस्था देखता-भालता है।

पतगसिह राजा के सात रानियाँ है। इनमे पटरानी है, कमलावती। शेष छहो के नाम है—रत्नमजरी, मुक्तावती, लीलावती, हीरावती, गजवती और फूलकुमारी। सातो हिल-मिलकर रहती है। सौतिया डाह नाम की कोई चीज वे जानती भी नही। ये सभी विद्यावती है। सगीत, नृत्य, काव्य पहेली आदि भिन्न-भिन्न ढगो से सब की सब राजा पतगसिह को रिझाती है। जब सातो खिलखिलाकर एक साथ हँसती है तो अन्त पुर गूंज उठता है।

राजा पतगसिह का महामन्त्री था मतिधीर। यह पूर्व मत्री गुणवर्धन का पुत्र था जो पिता की ही तरह विचक्षण और बुद्धिमान था। पूर्व मन्त्री गुणवर्धन परलोक सिधार गए थे। उनकी मृत्यु पर राजा पतगसिह खूब रोया था। मतिधीर बुद्धिमान और विचक्षण तो था ही, पतगसिह का बहुत बड़ा हितैषी भी था। एक दिन मन्त्री ने राजा पतगसिह को याद दिलाया—

"राजन्! मत्री का सम्मान आपने कर दिया। पर ज्योतिर्विद प० विष्णुदत्त अभी शेष है। उनका काम भी अभिनन्दनीय है।

"राजन्! जन्म के बारहवे दिन, जब आपका नामकरण

संस्कार हुआ था, तब संयोग से काशी से पं० विष्णुदत्त यहाँ आये थे। उन्होंने आपका जन्म पत्र देखकर उस पर नया प्रकाश डाला था। उन्होंने ही बताया था कि आपके जीवन में मृत्युसंकट आयेगा। यदि आपका विवाह छह महीने की शिशुवय से पहले ही कर दिया जाए तो आपका मृत्यु संकट टल जायगा। उन्होंने ही बताया था कि आप चार राज्यों के राजा बनेंगे। ये सब बातें मेरे पिता गुणवर्धन ने मरने से पहले मुझे बतायी थीं।

"राजन्! पं० विष्णुदत्त की बात प्रमाण मानकर आपका विवाह चार महीने की शिशुवय में शिशुकन्या कमलावती के साथ कर दिया गया था। यदि वे यहाँ न आते, तो यह सब क्योंकर होता?"

पतंगसिंह ने एक निश्वास छोड़ा और मन्त्री से कहा—

"मन्त्रिवर! भाग्य अथवा दैव के दाँव-पेच बड़े विचित्र हैं। सच ही मैं प० विष्णुदत्त को भूल गया। अब शीघ्र ही उनका सम्मान होगा।"

राजा पतंगसिंह ने अपने दूत काशी भेजे और पं० विष्णुदत्त को सम्मान सहित कंचनपुर में बुलाया। अपार धन देकर उन्हें सम्मानित किया। गाँवों की जागीर उन्होंने स्वीकार नहीं की, क्योंकि वे काशी में ही रहना चाहते थे। कालान्तर में वे पुन: काशी चले गए।

वर्षों बीत गए तो पतंगसिंह की रानियाँ पुत्रवती बनीं। रानियों के सात पुत्र हुए। पतंगसिंह ने उनके नाम पहचान में

लिए उनकी माताओं के नाम पर ही रखे, यथा—पटरानी कमलावती के पुत्र का नाम कमलसेन और रत्नमंजरी का पुत्र रत्नकुमार बना। इसी तरह मुक्तावती का मुक्तासिंह, लीलावती का लालसेन, हीरावती के उत्पन्न पुत्र का नाम हीरालाल हुआ। गजवती का कुमार गजकुमार बना और फूलकुमारी का फूलसिंह।

सातों पुत्र वृद्धि को प्राप्त होने लगे। धायें उनको पालती थीं। माताएँ भी अपने-अपने पुत्रों को अंक में लेकर चूमती थीं। बड़े हो गए सातों तो विद्यावान बने। सबके सब बहत्तर कलाओं में प्रवीण हुए। विवाह भी हो गया उनका। पतंगसिंह का राजनंदन पुत्रवधुओं की रुन-झुन से गूंजने लगा।

दिन बड़े आनंद से बीत रहे थे। वर्षों यों ही बीत गए। भाग्यसंयोग से कंचनपुर में मुनि ज्ञानसागर आये। हजारों मुमुक्षु मुनि शिष्य उनके साथ थे। एक उद्यान में विराजे। उद्यान-रक्षक ने राजा पतंगसिंह को जब मुनि पदार्पण का संवाद दिया तो राजा ने अपने कण्ठ का मूल्यवान हार उद्यान-रक्षक को तुरन्त दे दिया। फिर सिंहासन से नीचे उतरकर उद्यान की ओर मुंह करके मुनि को भाववन्दना की। तदनन्तर भेरी निनाद के साथ मुनि आगमन का शुभ संवाद कंचनपुर में फैल गया, जैसे वन में लगी आग फैल जाती है। नगर के नर-नारी, आबाल-वृद्ध उद्यान की ओर जाने लगे। रथ्या रथादि वाहनों से घिर गई। बहुत से लोग पैदल ही

उद्यान की ओर जा रहे थे।

राजा पतंगसिंह अपनी सभी रानियों, राजकुमारों और पुत्रवधुओं सहित मुनि ज्ञानसागर की देशना सुनने उद्यान पहुँचा। मुनिश्री की कल्याणकारी देशना सबने आत्मविभोर होकर सुनी। राजा-रंक, रोगी-नीरोगी, सुखी-दुःखी आदि सब अपने कर्मों से ही बनते है। जो पूर्वभव में जैसे कर्म कर आया है, वह वैसे ही फल भोग रहा है। कर्मों की लीला पर मुनि ने विस्तार से प्रकाश डाला। सब गद्गद् हो गए। अन्त में देशना समाप्त हुई और सबने अपने-अपने हृद-पात्रों को देखा कि किसने कितना ग्रहण किया।

देशना के अन्त मे राजा पतंगसिंह ने पूछा—

"भगवन्! मैंने पूर्वभव मे ऐसे क्या कर्म किये थे कि मैं चार राज्यों का राजा बना और ऐसा क्या पापकर्म किया कि मिथ्यारोप लगाकर मेरी विमाता ने मुझे मृत्युदण्ड दिलवाया?"

मुनि बोले—

"राजन्! कर्म किसी को नही छोड़ते। वे बड़े निष्ठुर होते है। अनजान मे किये गए कर्म तो तप द्वारा नष्ट भी हो जाते है, पर निकाचित कर्मों का भोग तो तीर्थंकरों को भी भोगना होता है। जान-अनजान में तुमने भी पूर्वभव में ऐसे कर्मों का अर्जन किया था, जो इस भव में भोगा। अब तुम अपना पूर्वभव सुनो।"

बहुत पुराने समय की बात है। हस्तिनापुर में हरिवा

नाम का एक अत्यन्त निर्धन विप्र रहता था। उसके कोई नहीं था। माता-पिता बचपन मे ही मर गए थे और निर्धन होने के कारण किसी ने उसका विवाह भी नही किया। अत: अकेला हरिदत्त विप्र भीख मांगकर अपनी गुजर करता था।

एक दिन हरिदत्त भिक्षा लेकर अपनी कुटिया पर आया। जैसे ही वह अपनी बांस की बनी टटिया खोल रहा था कि मासिक व्रत के व्रती एक मुनि भिक्षा के लिए हरिदत्त के द्वार पर रुके। मुनिदर्शन करने पड़ोस की कई स्त्रियां भी इकट्ठी हो गई और उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा करने लगी कि भिक्षाजीवी विप्र इन्हे क्या देगा।

हरिदत्त ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ अपने भिक्षान्न मे से चार मुट्ठी पका हुआ अन्न मुनि को बहराया। जब मुनि ने बस-बस किया, तभी उसका हाथ रुका। पास खड़ी स्त्रियो ने इस अन्नदान की अनुमोदना करते हुए कहा—

"यह विप्र धन्य है, जो व्रत का पारणा करने वाले मुनि इसके द्वार पर रुके। भिक्षान्न मे से भी पात्रदान करने वाला यह हरिदत्त धन्य है।"

जब मुनि अन्न लेकर चले गए तो शेष अन्न को लेकर हरिदत्त भोजन बनाने बैठा। ब्राह्मण होने के नाते वह स्वपाकी था—स्वयं बनाकर खाता था। चून इतना थोड़ा था कि एक ही रोटी बन पाई। जब हरिदत्त रोटी सेक रहा था तो एक कूकरी इस आशा से बैठी थी कि यह खावेगा तो एक टुकड़ा

मुझे भी देगा। वह कुतिया रोज ही आ बैठती थी और हरिदत्त भोजन का चतुर्थांश उसे नित्य ही देता था। आज ऐसा हुआ कि एक रोटी को रखकर हरिदत्त कुछ लेने भीतर गया कि एक कौआ उस रोटी को लेकर उड़ गया।

हरिदत्त ने जब रोटी नही देखी तो उसे कुतिया पर ही सन्देह हुआ। क्रोध मे हरिदत्त ने उसके डंडा मार दिया। भूख के कारण वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया था। डंडा मारने के अनन्तर बोला हरिदत्त—

"रोज तो खिलाता ही था। आज तनिक भी सन्तोष नही किया और पूरी रोटी साफ कर गई?"

डंडा भरपूर शक्ति से मारा था हरिदत्त ने। सो कुतिया मृतवत् (बेहोश) हो गई। बड़ी देर मे उसे होश आया। वैर-प्रीति तो पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। वह कुतिया फिर कभी हरिदत्त के द्वार पर आकर नही बैठी।

समय बीता तो आयु पूरी करके हरिदत्त मृत्यु को प्राप्त हुआ।

मुनि ज्ञानसागर ने पुन राजा पतगसिंह से कहा—

"राजन् ! पूर्वभव में तुम्ही हरिदत्त विप्र थे। उत्कट श्रद्धा भाव से तुमने सिर्फ चार मुट्ठी अन्न पका हुआ मुनि को बहराया, इससे तुमने चार राज्यों के सुखभोग का शुभ बंध किया। इसी पात्रदान के कारण तुम चार राज्यों के राजा बने हो।

"राजन् ! जिन पड़ोसिन स्त्रियों ने तुम्हारे पात्रदान की

प्रशंसा की थी, वे ही स्त्रियाँ तुम्हारी पत्नियाँ बनी है। बहुत-से लोग दूसरो को दान करते देखकर निन्दा करते हैं, वे महा-मूर्ख अकारण ही अशुभ कर्मो का बध कर लेते हैं। उनकी गाठ से कुछ जाता नही, तो भी कुढते है। यदि स्वय न दे सके तो देने वाले की प्रशसा तो करे ही। प्रशसा करने मात्र से ही वे स्त्रियाँ तुम्हारे दानफल मे सहभागिनी बन गई और तुम्हारी रानियाँ बनी।

"राजन्! कुतिया को तुमने मिथ्यारोप लगाकर दडित किया था। वह तो निरपराध थी। तुम्हारी रोटी तो कौआ ले गया था। इसी के फलस्वरूप वह कुतिया तुम्हारी विमाता अनगमाला बनी और मिथ्या आरोप लगाकर तुम्हे मृत्युदण्ड दिलवाया। कुतिया मरी नही, इसलिए तुम भी नही मरे, पर रानी अनगमाला की दृष्टि मे तो तुम मर ही गए थे।

"राजन्! जिन चार सैनिको ने तुम्हारी प्राणरक्षा की थी और जिनको तुमने चार-चार गाँवो की जागीरें दी, उनका भी तुमसे पूर्वभव का सम्बन्ध है। हरिदत्त विप्र के रूप मे तुमने इन चारो से ही भिक्षा प्राप्त की थी। ये चारो हस्तिनापुर मे ही रहते थे। ये चारो ठाकुर थे। एक बार जगल मे तुम इनकी प्राणरक्षा मे सहायक बने थे। सो राजाज्ञा होने पर भी इन्होने तुम्हे नही मारा और हिरन की आँखें निकाल कर ही राजाज्ञा का पालन भी कर दिया। भिक्षान्न प्राप्त करने के बदले तुमने भी इन्हे चार-चार गाँवो की जागीर दे दी।

"राजन् ! हरिदत्त के भव मे तुम्हारे माता-पिता तो बचपन में ही मर गये थे। विप्र हरिदत्त के रूप मे तुम अनाथ थे। लेकिन एक पड़ोसी वृद्ध को तुम पिता की तरह मानते थे। निस्संतान थे, तुम पुत्र की तरह सुबह-शाम उनका काम कर दिया करते थे। उसी स्नेह बंध के कारण ये वृद्ध तुम्हारे गुरु-आचार्य बने और उन्होंने तुम्हे पिता का पूरा प्यार दिया। निष्कपट होकर सब विद्याएँ तुम्हे दे दी और तुम्हारी प्राणरक्षा मे ही सहायक बने।"

"राजन् ! यह संसार मात्र कर्मों की एक नाटकशाला ही है। नाते-रिश्ते तो कर्मभोगो के लिए ही बनते और बदलते हैं।"

अपना पूर्वभव सुनकर राजा पतगसिह प्रतिबुद्ध हो गए। वे बोले—

"भगवन् ! अब तो मुझे अपनी शरण मे ले लो। मुझे तो अब सब ओर यही दीखता है कि सब जन कर्मों की देह लिए घूम रहे हैं। जब नाममात्र के शुभ कर्म से मैं चार राज्यों का राजा और एक डडा मारने के अशुभ कर्म से दर-दर भटकने का दण्ड पा सकता हूँ तो मैं इन दोनो की तरह कर्मों का क्षय क्यो न कर डालूँ ? क्योकि शुभ कर्म करके भी तो जन्म लेना पड़ता है।"

मुनि बोले—

"राजन् ! मनुष्य जन्म इसीलिए तो मिलता है। जैसा करना तुम्हारी आत्मा को अच्छा लगे, वही करो, पर शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।"

मुनि से अनुमति ले पतगसिह घर आया तो उसकी पत्नियाँ बोली—

"नाथ ! हमे क्यो छोड जाओगे ? क्या हमारा पूर्वभव नही था ? क्या हमारे कर्म नही है ? हम भी अपने कर्मों का क्षय करेंगी ।"

"यह तो और भी अच्छा है ।" पतगसिह ने कहा—"जैसे यहाँ साथ रही, वैसे ही संयम क्षेत्र मे भी साथ रहेगे हम । यहाँ शरीर भेद से तुम स्त्रियाँ और मैं पुरुष, और संयम क्षेत्र मे हम सभी आत्माएँ है ।"

फिर पतगसिह ने अपना उत्तरदायित्व पुत्रो को सौपा । चार को चारो राज्य दिये, शेषो को भाइयो का युवराज बनाया । फिर दीक्षा महोत्सव की तैयारियाँ हुई । सातो रानियो सहित पतंगसिह ने दीक्षा अगीकार की । पतगसिह जैसे सुशासक राजा के लिए प्रजा ने आँसू बहाये । पर ये आँसू खुशी के आँसू थे ।

समय बीतता चला गया । चारित्र का पूर्णत: पालन करके मुनि पतगसिह ने मोक्ष पाया । उनकी साध्वी पत्नियो ने देवलोक प्राप्त किया । तप से सब कुछ सम्भव है । तप ही महा पुरुषार्थ है और महापुरुषार्थ करने से ही स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होते है ।

जीवनोपयोगी सरस साहित्य पढ़िए

१.	सात्त्विक और व्यसनमुक्त जीवन	२)
२.	विपत्तियों की जड़ : जुआ	२)
३.	अनेक अनर्थो का कारण : मांसाहार	२)
४.	मानव का शत्रु : मद्यपान	२)
५.	वेश्यागमन : मानव-जीवन का कोढ़	२)
६.	शिकार : पापो का स्रोत	२)
७.	चोरी : अनैतिकता की जननी	२)
८.	परस्त्री-सेवन : सर्वनाश का मार्ग	२)
९.	हृदय-परिवर्तन (नाटक)	२)
१०.	भाग्य-क्रीड़ा (गोविंदसिंहचरित्र)	८)
११.	किस्मत का खिलाड़ी (गजसिंहचरित्र)	८)
१२.	सांझ-सवेरा (वसन्तमाधव-मजुघोषा)	८)
१३.	बीज और वृक्ष (पतंगसिंहचरित्र)	१०)

☐ सम्पर्क करें—

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर

अद्भुत एवं अपूर्व संग्रहणीय साहित्य :

कर्मग्रन्थ (भाग १ से ६) सम्पूर्ण सेट रु. १६०

जैन कर्मशास्त्र का गहनतम ग्रन्थ, जिसमे कर्म सिद्धान्त के सर्व-अग-उपांगो का विवेचन विश्लेषण बड़ी ही सरल और सुबोध शैली मे प्रस्तुत किया गया है।

मूल रचयिता : श्रीमद्देवेन्द्रसूरि

व्याख्याकार : मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

संपादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'

देवकुमार जैन

प्रकाशक

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति,

पीपलिया बाजार, ब्यावर